चतुर्वेद

जिसमें उपदेश पूर्ण सचित्र
चार गल्प हैं

श्रीयोगीन्द्रनाथ समाद्दार, प्रोफेसर,
पटना कौलेज़, पटना

पहली बार १०००] [मूल्य ॥।=) आना ।

मुद्रक—
बजरङ्ग सहाय सिंह, मैनेजर
सेन्ट्रल प्रिन्टिङ्ग प्रेस,
मुरादपुर, पटना।

पटना कौलेज़ के मेरे उन प्राचीन तथा
नवीन विद्यार्थियों को जिन के साथ
मेरे जीवन का उत्कृष्टतम अंश
व्यतीत हुआ है, यह
पुस्तक समर्पित है।

प्राप्तिस्थान---

(१) कमला बूक डिपो,
मुरादपुर, पटना।

(२) एम० एन० बर्मन एण्ड को०,
बांकीपुर।

(३) सेन्ट्रल प्रिन्टिंग प्रेस
मुरादपुर, पटना।

(४) सरस्वती भण्डार,
मुरादपुर (पटना)।

वक्तव्य

मेरे अपनाये हुए प्रान्त की भाषा—हिन्दी—में पुस्तक लिखने का मेरा यह पहला ही प्रयत्न है; सुतरां इस में त्रुटि और भूल हुई ही होगी। इसलिये मैं अपने उदार पाठकों के यहां क्षमा प्रार्थी हूं।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे पं० देवदत्त त्रिपाठी से बहुत कुछ सहायता मिली है और पं० बालमुकुन्द मिश्र ने भी जगह जगह अपनी विचार पूर्ण सम्मति देकर मेरी सहायता की है। अन्त लिखित महाशय ने प्रूफ संशोधन द्वारा मेरी और भी मदद की। इन लोगों की सहायता के विना हम शायद ही इस पुस्तक को प्रकाश करने में समर्थ हो सकते।

पटना कौलेज,
पटना।
(अक्तोबर १९२३ ई०)

श्रीयोगीन्द्रनाथ समाद्दार।

विषय सूची

१—संन्यास	...	...	१ —४४
२—निर्वाकूनल	...	...	४५ —६५
३—आत्मोत्सर्ग	...	...	६६ —१३३
४—जीवन्मुक्ति	...	...	१३४—१६०

—०✻०—

चित्र सूची

१—बुद्ध	...	...	...	मुखपत्र
१—बुद्ध	...	...	...	३७

श्रीगणेशाय नमः

चतुर्वेद

संन्यास

ब्रह्मा प्रान्तके आकियाब नगरमें मौंपे नामका एक बहुत प्रतिष्ठित मनुष्य रहता था। आकियाबके न्यायकर्त्ताके पदपर प्रतिष्ठित हो कर वह सर्वसाधारण का अत्यन्त प्रिय हो गया था। छोटेसे लेकर बड़े तक सभी उसका सम्मान करते थे।

मौंपेको एक सुन्दर स्त्री और एक लड़का था। उसके सहाय-सम्पद और सांसारिक सुख-स्वच्छन्दतामें किसी बातकी कमी नहीं थी। उसकी न्याय-निपुणतासे उसके प्रधान विचारकके पदपर प्रतिष्ठित होनेमें भी लोगोंको सन्देह नहीं था। बीच-बीचमें वह सोचा करता था, कि प्रधान विचारकके पदपर प्रतिष्ठित होकर मैं एक मठ बनवाऊंगा, जिसके दरवाज़े पर लिखा रहेगा, कि "प्रधान विचारपति मौंपे द्वारा इतने सहस्त्र रुपयों के खर्चसे बना"। वह सोचता था, कि "मेरा लड़का दिनों दिन सयाना हो रहा है; यद्यपि यह अभी दो सालका ही है;

है। पूरा जवान होनेपर यह भी किसी धनाढ्यकी कन्या से विवाह करेगा और न्यायालयकी शोभा बढ़ावेगा। मेरी धर्म-पत्नीके यदि एक कन्या होगी, तो उसका विवाह मैं किसी बड़े घरमें कर दूंगा। यह सब मेरे लिये बड़े आनन्दकी बात होगी। उस समय बड़े आन्दके साथ मेरा दिन कटेगा"। इन्हीं सब सुखमयी कल्पनाओं से मौंपे खुशीके मारे गद्‌गद हो जाता था।

एक दिन प्रातःकाल मौंपे अपना सबेरेका जलपान कर रहा था। गत रात्रिमें इसने कुछ गुरुतर भोजन किया था; रातमें अच्छी तरहसे नींद नहीं आयी थी; तथापि उसने सबेरेका जलपान करना नहीं छोड़ा। जलपानकी जो चीजें आयी थीं, उनमें खूब पके पके आम भी थे। उन आमोंमें से एक आम खाकर ज्योंही उसने उदासीके साथ और चीजें खाना आरम्भ किया, त्योंही उसके दाँत कटकटा उठे। दाँतमें आमकी गुठली से कुछ चोट लग गयी थी, जिससे उसे बड़ा कष्ट हुआ, साथही एक दाँत भी टूट गया। दाँत के टूट जाने से वेदना तो कम हो गयी; लेकिन टूटे हुए दाँत देखकर वह बड़ी चिन्तामें पड़ गया;—"इसी प्रकार हम लोगों का शरीरावसान होता है। यह भी तो एक प्रकारकी आंशिक मृत्यु ही है। हमलोग प्रति मुहूर्त्त मृत्यु-यातना भोगते हैं, फिर भी उस ओर ध्यान नहीं देते। हमलोगोंका यह शरीर कितना तुच्छ है"। मौंपे ने, ऐसा विचार होते ही, जलपान करना छोड़ दिया।

कचहरी जाने के रास्ते में एक कन्या-विद्यालय पड़ता था, वह उस विद्यालय को देखनेके लिये उसमें गया। शिक्षिकाने बड़े सम्मानके साथ वहाँ उसकी अभ्यर्थना की। धीरे धीरे भिन्न भिन्न कक्षाओंके देखनेके बाद अन्तमें सबसे नीचे दर्जेकी बालिकाओंसे, कुछ पूछनेका अनुरोध मौंपेने अध्यापिकासे किया।

अध्यापिकाने पूछा,—"तुम लोगोंका जन्म किस लिये हुआ है?"। सुकुमारमति अल्पवयस्क बालिकाओंने इसके जवाबमें कहा, "किस लिये? मरनेके लिये ही हम लोगों का जन्म हुआ है"। उस समय मौंपेको ऐसा मालूम होने लगा, मानो, उस दर्जेकी दीवारें बालिकाओं के स्वरमें स्वर मिलाकर कह रही हैं "**मरनेके लियेही हमलोगों का जन्म हुआ है**"। अध्यापिकाने और जितने सवाल किये, उनको वह नहीं सुन सका—उसे मालूम होने लगा, मानो, चारो ओरसे प्रतिध्वनि हो रही है—"**मरनेके लियेही हमलोगों का जन्म हुआ है**"।

और जब कभी उस विद्यालयको देखनेके लिये मौंपे वहाँ जाता था, तब विद्यालय देखनेके बाद, वह उसकी अध्यापिकाकी प्रशंसा किया करता था; बालिकाओंको पुरस्कार देता था; लेकिन उसने आज यह सब कुछ नहीं किया—बिना कुछ बोलचाल किये वह चुपचाप विद्यालयसे चला गया। उसके इस व्यवहारसे अध्यापिकाओंको बड़ा आश्चर्य हुआ।

विद्यालयसे बाहर आनेपर मानों, उसके हृदयके भीतरसे कोई कह उठा, -"हे पद्मासनासीन प्रभो ! तुम्हारे करुणाकी सीमा नहीं है"। बड़े साफ तरीके और बड़े सुन्दर उपायसे, हमलोगोंको जो जानना जरूरी है, उसको आप जना देते हैं ; फिर भी, हम हतभागे इसका खयाल नहीं करते । हमलोग प्रतिदिन मृत्युके मार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं और प्रति मुहूर्त्त भगवानके साथ साक्षात् होनेकी सम्भावना होती है ; तोभी उसके लिये हमलोग तैयार नहीं हो सकते । हम कैसे अज्ञान हैं ! हमलोग तुच्छ-से तुच्छ वस्तुएं पानेके लिये अपने प्राणोंपर खेल कर परिश्रम करते हैं ; किन्तु जिसके लिये हमलोगोंको सर्वदा सावधान रहना पड़ता है, उसके लिये कभी भूल कर भी नहीं सोचते । यह कितने बड़े भारी दुःखकी बात है ! किस समय हमलोग उस विषयकी चिन्ता करेंगे ? अब कब ? निर्बोध ! आज ही ! अभी !"। वह अब अपने आपको भूलकर बड़ी तेजीसे आगे पाँव बढ़ाने लगा ।

ठीक इसी समय जमीनपर बैठे हुए एक भिक्षुकने उससे भिक्षा माँगी। उस समय उसका चित्त बहुत चंचल हो रहा था, उसने अपनी पाकेटमें हाथ लगाया और एक मनीबेग, जिसमें रुपये और रेजकारियां भरी हुई थीं, निकाल कर उसके आगे फेंक दिया। इसके बाद "सबसे पहले दान करना चाहिये—दानके जैसा दूसरा कोई काम नहीं है ; ऊपर उठनेके पहले दान करना होता है" —इस तरहकी चिन्ता करते हुए मौंपे आगे बढ़ा ।

मौंपेकी धर्म-पत्नी समझ गयी, कि मेरे स्वामीका भाव आज-कल कुछ बदला हुआ सा होगया है। अपने पतिके इस भाव-परिवर्त्तनका कारण जाननेके लिये उसने बहुत सोचा-विचारा; परन्तु कोई कारण उसे नहीं मिला। वह यह अच्छी तरह जानती थी, कि मेरी किसी भूलसे स्वामी का यह भाव-परिवर्त्तन नहीं हुआ है। दोनोमें जराभी-मन-मोटाव नहीं था। पति-पत्नीमें प्रगाढ़ प्रणय था; और ये दोनों दुनियाँमें और किसी बातका खयाल नहीं रखते थे। अपनी ही घर-गृहस्थीको लेकर ये लोग मस्त रहते थे। इन लोगों की रहन-सहन और चाल-ढाल देखने से मालूम होता था, मानो, अपने परिवारके बाहर किसीसे इनको कुछ जान-पहचान ही न हो। अब उस भावमें कुछ परिवर्त्तन हो गया है, पर, उस परिवर्त्तनका कारण मौंपेकी धर्म-पत्नी कुछ नहीं समझ सकी। अबतक मौंपे अपनी इच्छाके अनुसार जो चाहता था, वह दान कर देता था; पतिके इस भाव को देखकर पतिप्राणा पत्नी समझती थी, कि इस समय स्वामीकी आँखोंमें स्त्री, पुत्र और बाहरवाले सब एक समान हैं—किसीमें कुछ अन्तर नहीं है। इसका कारण?

एक दिन स्त्रीने अपने पतिसे कहा,—"आज-कल तुम केवल दान कर रहे हो। तुम यह नहीं सोचते, कि मेरे एक पुत्र भी है। अगर तुम अपनी सारी सम्पत्ति दान में ही लोगों को दे डालोगे, तो भविष्य में उसकी क्या दशा होगी? और क्या

मालूम, यदि हमलोगोंके एक कन्या हो जाय, तो फिर क्या होगा ? उस हालतमें कन्याकी शादी के लिये कहाँसे खर्च आवेगा ?"

इसके उत्तरमें स्वामीने कहा,—"हमलोगोंको अब कोई सन्तान नहीं होगी"।

इस जवाब को सुनकर मौंपे की स्त्री चुप रह गयी, स्वामी के कहनेका मतलब वह अच्छी तरह समझ गयी। वह सोचने लगी,—'मठोंमें ही धार्मिक पुरुष निवास करते हैं। क्या संसार में जो सज्जन रहते हैं, उनके लिये धर्म का उपार्जन करना असम्भव है ?'

एक वर्ष बीत गया। मौंपेने कायमनोवाक्यसे संयत होकर इस एक वर्षके दीर्घ समयको बिता दिया। वह अविश्रान्त दान करने लगा, यहाँ तक, कि अब उसकी अतुल धन-सम्पत्ति समाप्त हो चली।

एक दिन एक बड़ा जटिल मुकद्दमा, मौंपे के सामने विचार के लिये आया। एक पुरुषने अपनी स्त्रीको जानसे मार डाला था। संक्षेपमें घटना इस प्रकार थी :—

'एक पच्चास सालसे ज्यादेके आदमी ने, जिसको एक हाथ नहीं था, अपनी विवाहिता स्त्री को, जिसके साथ शादी हुए कुल एक साल हुआ था, मार डाला था। स्त्री की अवस्था कुल सतरह सालकी थी'।

न्यायालयमें अपराधीके लाये जानेपर मौंपेने उससे पूछा,—"क्या तुमने अपने स्त्रीकी हत्या की है ?"

अपराधीने बिना किसी हिचकिचाहटके निडर होकर कहा,—"हाँ, महाशय! की है।"

"ऐसा करनेका कारण ? अभागा! क्या तू नहीं जानता, कि अपने इस व्यवहारसे तूने अपना इहलोक-परलोक दोनों बिगाड़ डाला ?"

"जानताहूं, मैंने सब जान-बूझ कर ही अपना इहलोक और परलोक बिगाड़ा है ; लेकिन मेरे लिये कोई दूसरा उपाय भी तो नहीं था। क्या आपकी स्त्री व्यभिचारिणी होती, तो आप ही उस हालतमें बिना कुछ किये रह सकते थे।"

इसी समय अदालत में आयी हुई हत्याकारीकी सासने चिल्लाकर कहा,—"बूढ़ा आदमी ! ऐसा होना क्या कोई आश्चर्यकी बात है ? तुमने सतरह साल की छोकड़ी से क्यों शादी की ? रात दिन तू मेरी लड़की को तंग किया करता था!"

इसपर उस हतभागे हत्यारेने भी चिल्लाकर कहा,—"क्या मुझसे रुपये लेकर तूने मेरे हाथ अपनी लड़की नहीं बेची थी ?"

मौंपेने अदालतमें शोर-गुल मचानेसे मना किया। उसने अपराधी से कहा,—"सच-सच क्या बात है, सो सब मुझसे खोलकर कहो।" हत्याकारी ने कहना आरम्भ किया,—"मेरे जन्म होनेके पहले ही मेरे पिता को हत्या कर दी गयी थी। माँ कहनेके पहलेही मैं मातृ-हीन हो गया। जहाँतक मुझे

याद है, मैं बराबर भीख माँग कर ही अपना काम चला रहा हूं। मेरा एक हाथ नहीं है, इसलिये मैं किसी कामके लायक नहीं हूं। आपसे यह कहने में भी मुझे कोई आपत्ति नहीं है, कि मैं केवल हस्तहीन ही नहीं हूं; बल्कि मुझे मूर्छा की भी बीमारी है। जब यह रोग बढ़ता है, तब मैं बेहोश हो जाता हूं। भिक्षा माँगने के लिये जब मैं एक दिन बाहर निकला, तो इसी स्त्री की दूकानके सामने मैं बेहोश हो गया—"

पुनः उसी स्त्री ने भिक्षुक की बात काट कर कहना आरम्भ किया,—"हुजूर, फल बेच कर मैं अच्छे उपाय से अपना जीवन बिताया करती हूं और प्रति सप्ताह भगवान बुद्ध का नाम ले कर दो आने पैसे दान भी करती हूं"।

मौंपेने उस स्त्री को फिर चुप रहनेकी आज्ञा दी। अपराधी कहने लगा,—"जिस समय मैं इसकी दूकान के सामने बेहोश हो गया था, उस समय इसकी कन्या--मेरी स्त्री, जिसको मैंने मार डाला है,--मेरी दुर्दशा देख अत्यन्त दयार्द्र हो गयी। वह दौड़-दौड़ कर मेरी सेवा शुश्रूषा करने लगी। उसी समय मेरे हस्त-विहीन स्कन्ध से उसके अंगका स्पर्श हो गया। यही मेरे सर्वनाश का मूल कारण है"।

यहाँ पर मौंपे यह पूछे बिना नहीं रह सका, कि "तुम्हारे सर्वनाशका यही मूल क्यों है?"

उसने कहा,--"महाशय! विचार कर देखिये, उस समय मेरी अवस्था पचास साल की थी, उसके पहले मैंने किसी भी स्त्री का अंग-स्पर्श नहीं कियाथा।"

हत्याकारी की सास, तिरस्कार भरी हँसी हँसने लगी; किन्तु अपराधी उसकी ओर ध्यान न दे कर कहने लगा,--"महाशय ! यह भाग्य का फेर था। यही मेरे सर्वनाश का मूल था। उसके पहले मुझे कोई अभाव नहीं था, कोई कष्ट नहीं था; लेकिन उसी बुरे स्पर्श से मेरी अवस्था बिलकुल बदल गयी। भिक्षासे मिले हुए अन्न में अब मुझे संतोष नहीं होता। मेरे मनमें अशान्तिका संचार हुआ। इस तरह एक साल बीत गया"।

अदालतमें आयी हुई उसकी सासने फिर चिल्ला कर कहा--'यह प्रति दिन मेरे दूकान के सामनेसे आया-जाया करता था और मेरी कन्याकी ओर घूरा करता था"।

अपराधी कहने लगा,—"वह यह सब बिलकुल सच कह रही है। मैं वैसा किये बिना रह नहीं सकता था; पर, मेरी दुर्दशा की सीमा नहीं थी। एक दिन मैं भीख मांगने के लिये मन्दिर के सामने जा पहुंचा। उसी समय एक दाताके वहाँ आनेपर मैंने उनसे भिक्षा माँगी। वे रुपयोंसे भरी हुई एक थैली मेरे सामने फेंक कर वहांसे चले गये। थैली खोल कर मैंने उसके भीतर रखे हुए रुपयोंको गिना तो देखा, उसमें ढाई सौ रुपये रखे हुए हैं। मैं वहीं बैठ गया; उस समय वह ज़गह छोड़ने का साहस नहीं हुआ। मैंने सोचा, कि दाताने भूलसे ही इतने रुपये मेरे सामने फेंक दिये हैं, ज़रूर तुरतही उधरसे लौट कर, अपना बेग वे मुझसे माँग लेंगे। इसीलिये, इस समय यहीं

बैठ कर उनकी इन्तजारी करना मुनासिब है; लेकिन दाता फिर लौट कर नहीं आये। अब मैं दो सौ पचास रुपयेका मालिक बन बैठा। मैं थोड़ी देरके बाद वहाँसे उठ कर इसो स्त्रीके पास आया और कहा,—"मैं तुझे एक सौ रुपये दूंगा तू अपनी कन्याके साथ मेरा विवाह कर दे"।

इसपर उसकी सासने पहलेकी तरह चिल्ला कर कहा,—"यह बूढ़ा झूठ बोलता है! तू पहले केवल पचास रुपये देना चाहता था। मैंने बड़े कष्टसे तुझसे रुपये वसूल किये थे"।

मौंपेने विरक्त होकर कहा,—"तू अपने अपमानकी बातों को क्यों प्रकट कर रही है?"

उस स्त्रीने कहा;—"महाशय! आप यह क्यों भूल रहे हैं, कि मैं एक विधवा हूं? क्या मैं प्रति सप्ताह बुद्धके नामपर दो आना दान नहीं करती? यह सब कहाँसे आयगा?"

'फिर कुछ बोलनेपर जुर्माना होगा' मौंपेने यह सूचना देकर अपराधीको थोड़ेमें अपना वक्तव्य समाप्त करनेको कहा।

वह कहने लगा,—"मैंने इसको सौ रुपये तथा इसकी कन्याको एक सोनेका कंकण दिया। इसके तीन दिन बाद हमलोगों का विवाह हो गया"।

यहाँपर मौंपेने पूछा,—"तो क्या वह तुझे प्यार करती थी?"

अपराधी इसका उत्तर देना ही चाहता था, कि उसे रोक कर उसकी विधवा सासने कहा,—"रुपयेके द्वारा इसने मेरी

कन्याको अपने वशमें कर लिया था। लोहे जैसे भारी सोनेके कंकणकी माया क्या थोड़ी होती है ?"

मौंपेने अपराधीसे पूछा—"तो क्या वह तुझे प्यार करती थी ?"

अपराधीने इसके जवाबमें कहा,—"महाशय! उसने अपनी इच्छासे ही मेरे साथ विवाह किया था"।

"क्या तुमने एकबार भी इसका विचार नहीं किया था, कि वह एक बालिका है और मैं वृद्ध हूं"।

"महाशय! मैंने इन सब बातोंका कुछ भी विचार नहीं किया था। दूसरे किसीको अपनी धर्म-पत्नी बनानेका विचार ही मेरे मनमें नहीं आया। मैंने और कोई भी बात नहीं सोची थी"।

"अच्छा, इसके बाद क्या हुआ ?"

"होता तो सभी अच्छा हो सकता था। आप इस बातका अनुमान कर सकेंगे, कि मैं उसको कितना ज्यादा प्यार करता था। मैं उसको एक बहुमूल्य हीरेकी तरह मानता था"।

बात समाप्त होनेके साथ-ही-साथ उसकी सास कहने लगी,—"क्यों नहीं, उसको यदि तुम बक्समें बन्द कर रख सकते, तो ज़रूर निश्चिन्त रह सकते, उस हालतमें किसी दूसरेकी आँख उसपर नहीं पड़ती"।

अपराधी कहने लगा,—"हमलोगोंने एक छोटीसी दुकान

खोली। दूकानका काम-काज मजेमें चलने लगा। आखिर लम्बे-लम्बे बालोंवाला एक आदमी वहां आया। इस समय वह मौलमेन् या कहीं दूसरी ज़गह गया है। उसने एक दिन आकर मेरी स्त्रीके साथ बहुत देरतक बात-चीत की। उसके चले जानेपर मैंने अपनी स्त्रीसे पूछा, इतनी देरतक तुमने उससे क्यों बात-चीत की ? इसके जवाबमें उसने कहा, ऐसे बड़े आदमीके साथ मेरी शादी हो हुई है, कि मैं और किसीसे बातचीत ही न करूं"।

इसपर अपराधीकी सास बोलने लगी,—"वह मेरा आत्मीय है और लड़कपन सेही, हमलोगों का परिचित है। वह बैङ्कक गया था, चार सालके बाद वहाँसे लौटा था, ऐसी हालतमें उससे देरतक बातचीत करनेमें क्या अपराध हो सकता है ? मेरी लड़कीने मुझसे सारी बातें कह दी हैं। वह सती-साध्वी थी। केवल उसके बौड़मपन से ही सब चौपट हुआ"।

मौंपेने कहा,—"तो तू स्वीकार करती है, कि तेरी कन्या अपराधिनी है ?"

इसके जवाबमें उस औरतने कहा,—"महाशय ! एक असहाय स्त्री ऐसे सन्दिग्ध व्यक्तिके हाथसे अपनी जान बचानेके लिये और क्या कर सकती है ? यह बूढ़ा रात दिन उसको सन्देह-भरी दृष्टिसे देखता था"।

मौंपेने अपराधीको अपना वक्तव्य समाप्त करनेको कहा।

अपराधीने फिर कहना आरम्भ किया,—महाशय! अब ज्यादा कुछ कहना नहीं है। एक दिन इसी स्त्रीके घर मैंने दो आदमियोंको एक साथ देखा। मैंने उस समय ऐसा भाव दिखाया, जिससे उन दोनोंपर यह मालूम हो जाये, कि मैंने कुछ नहीं देखा; अन्यथा उसके भाग जानेका डर था"।

विचार-कर्त्ताने यहाँ कहा,—"तुम उसे भाग जाने देते, तभी तो अच्छा होता"।

अपराधीने विचारकर्त्ताकी ओर विस्मयभरी आँखोंसे देख कर कहा,—"यह कैसे सम्भव हो सकता है, महाशय! मैं अपनी स्त्रीको भाग जाने देता? वह भाग जाती तो उसी अपने साथीके संग वह सदाके लिये रह जाती"।

"इससे क्या होता-जाता? वह तो व्यभिचारिणी थी ही।"

महाशय! आपने जो कुछ कहा, वह सब सही है। पर दया कर जरा विचारपूर्वक देखिये, कि पचास सालकी उमरमें मैंने विवाह किया था। ऐसी हालतमें अपनी स्त्री मैं दूसरेको कैसे दे सकता था?"

"अब भी तो तुम उसको नहीं पा सकोगे"।

"महाशय! ठीक है—यह मुझे मंजूर है; लेकिन अपनी स्त्रीको दूसरेके यहां रहने देना मंजूर नहीं है!"

मौंपेने चन्द मिनटोंतक मौन रहनेके बाद अपराधीसे कहा,—"अच्छा, तुम अपना वक्तव्य समाप्त करो"।

जबतक रात नहीं हुई, तबतक मैं ऐसा भाव बनाये रखा, जिससे मालूम हो, कि मैं कुछ नहीं जानता। उस दिन वह मुझे हर रोजसे ज्यादा प्यार करने लगी। शादी होने के पहले दो-चार दिनों तक उसने मेरा जैसा आदर-सत्कार किया था, उस दिन भी वैसा ही किया; लेकिन तौभी मैंने उसपर यह प्रकट नहीं होने दिया, कि मैं उसका सारा रहस्य जानता हूं। उसने कहा, कि मालूम होता है, कि तुम समझ रहे हो, कि मैं उसे प्यार करती हूं। मैंने और भी अपने मनोभाव को छिपानेका यत्न किया। किसी प्रकार भी अपने मनोगत भावको उस पर प्रकट नहीं होने दिया। जब बहुत रात बीत गई और देखा, कि यह गाढ़ी नींद ले रही है, तब एक तेज़ छूरा लेकर उसकी छाती के ऊपर का कपड़ा हटाया। उसके शरीरके जिस स्थानका स्पर्श पहले पहल मेरे शरीरसे हुआ था, वहां दो बार छूरा ले गया; लेकिन न मालूम क्यों दोनों बार मैं उस पर आघात नहीं कर सका। अन्तमें मैंने क्या किया और क्या हुआ, सो कुछ नहीं कह सकता। केवल इतनाही याद है, कि मैंने उसका गला टीप कर और साँस रोककर उसको मार डाला"।

"क्या एकही हाथसे तुमने यह काम किया?"

"हाँ, महाशय; एकही हाथसे हुआ। मैंने यह काम कैसे किया सो मैं कुछ नहीं बता सकता। उसने जरा भी हिल-डोल नहीं किया। मैं उसे दूसरे को तो दे नहीं सकता था!"

इसी समय उसकी सास, इतने जोरों से चिल्लायी, कि अदालतका कमरा गूंज उठा। उस समयके उसके भाव देखनेसे मालूम होता था, कि इस समय अगर वह अपराधीको पा जायगी तो उसे कच्चे चिबा जायगी। एक चपरासीने उसे मुश्किलसे पकड़ रक्खा।

मौंपे बहुत देरतक बैठ कर सोचने लगा। अन्तमें बोला —"तुमने जो अपना अपराध स्वीकार कर लिया, यह तुम्हारे इहलोक और परलोक दोनों के लिये मंगल-जनक है।अगर झूठी बात कहते, तो इससे खुद तुम अपने आपको धोखा देते। अच्छा, यह तो बताओ, कि इन ढ़ाई सौ रुपयों को तुमने सचमुच कहीं भिक्षामें पाया था या चोरी की थी?"

अपराधीने बड़ी दृढ़ताके साथ कहा—"अपने पूर्वजों के पवित्र नाम लेकर मैं कह रहा हूं, मैंने अपने जीवनमें कभी एक दाना चावलभी नहीं चोराया है। जिस समय वे रुपये मुझे मिले थे, वह समय आजभी मेरी आंखोंके सामने नाच रहा है। मालूम होता है, कि कलही ये रुपये मुझे मिले हैं। जिन्होंने रुपये दिये थे, वे प्रतिष्ठित और उच्च पदाधिकारी मनुष्य हैं। उस समय, वे मठ के सामने वाली कन्यापाठशालेसे चले आ रहे थे"।

अपराधी की इस बात को सुन कर मौंपे काँप उठा, अब तक इसने अपराधी को अच्छी तरहसे नहीं देखा था। अब उसकी ओर आँख उठा कर वह बड़े ग़ौर से उसे देखने लगे। अपराधी

ने भी उसकी ओर देखा। चार आँखें होते ही एकत्र-एक बिजली की चमक या वज्र गिरने से जैसे मनुष्य बड़े आश्चर्यमें पड़ जाते हैं, उसी तरह ये दोनों भी एक दूसरे को देख और पहचान कर आश्चर्य-चकित तथा स्तब्ध हो गये। अन्त में अपराधी ने बड़ी धीरताके साथ कहा, —"महाशय! आपही वह दाता हैं। आपका दानही इस अनर्थ का मूल कारण है"।

मौंपेके मस्तकपर मानो, वज्र गिर पड़ा। अदालतके कमरेमें निस्तब्धता छा गयी। मौंपेने अपराधीको फिर कारागारमें ले जानेका हुक्म दिया, इसके बाद वह सोचने लगा, कि इस मनुष्यको मृत्यु-दण्ड देनेका मुझे कोई अधिकार नहीं है; लेकिन कानूनमें इस अपराधके लिये एकमात्र दण्ड है—मृत्यु। न्यायकर्ताकी हैसियतसे मृत्यु-दण्डके सिवाय और कोई दण्ड इसे देनेका अधिकार ही मुझको नहीं है। अब उपाय क्या है? या तो इसे मृत्यु-दण्डसे दण्डित करना होगा या अपनी नौकरी छोड़नी होगी। **क्या एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के अपराधोंका विचार कर सकता है?** लेकिन सर्वसाधारणके साथ मेरा सम्बन्ध ही क्या है? मेरा सवाल यही है, कि क्या **मैं उसका विचार कर सकता हूं?** इसका एकमात्र उत्तर है 'नहीं'। मैं अपने ही अपराधोंका रात दिन विचार कर रहा हूं। मैं दूसरेके अपराधों का विचार नहीं कर सकता।

उस दिनके लिये अदालतकी कार्यवाही यहीं समाप्त हो गयी ।

मौंपेने घर पहुंचते ही अपनी स्त्रीसे कहा,—"आजही मैं अपनी नौकरीसे इस्तीफा दूंगा । मैं किसीके भी अपराधोंका विचार नहीं कर सकता" ।

स्त्रीने पूछा,—"क्यों ?"

स्वामीने उत्तर दिया,—"दूसरे के अपराधों का विचार करनेका मुझे कोई अधिकार नहीं है" ।

इसके उत्तरमें स्त्री बोली,—"कितने ही मनुष्य तो विचारकर्त्ताके आसनको सुशोभित कर रहे हैं" ।

स्वामी ने कहा,—"तो उससे मेरा क्या होता-जाता है ?"

स्त्रीने कहा,—"विचारकर्त्ताके आसनपर आसीन रहना, तुम्हारे लिये उचित है या नहीं, सो मैं नहीं जानती ; पर यह तुम याद रखना, कि तुम्हें स्त्री और पुत्रका भरण पोषण करना है। नौकरी छोड़नेसे हमलोगोंका निर्वाह कैसे होगा ? तुमने तो अपना सर्वस्व दान कर दिया है" ।

स्वामीने इसके उत्तरमें कहा, "देहातमें तो हमलोगोंकी थोड़ी बहुत सम्पत्ति है" ।

इस बार स्त्री श्लेषव्यञ्जक स्वरमें बोली,--"हाँ, वह तो है ही । पर क्या किसानोंकी तरह तुम खेतमें खट सकोगे ? क्या उतनी ही सम्पत्ति में हमलोगोंका काम चल जायगा ? उस खेतसे तुम जो कुछ पाओगे, उससे तो खाली भात भी भरपेट नहीं मिलेगा" ।

मौंपेने इसका कुछ जवाब नहीं दिया ; लेकिन उसी दिन उसने अपने अफ़सरके पास अपनी नौकरीका इस्तीफ़ा भेज दिया। इस्तीफ़ा देनेका उसने कोई कारण नहीं बतलाया।

कुछ दिनों के बाद उसके अफ़सर साहब, इस्तीफ़ेके सबबका पता लगानेके लिये खुद उसके पास आये । बुढ़ौती या बीमारीके कारण वह इस्तीफ़ा देता, तो उसे पेन्सन मिलती, लेकिन यहाँपर अफ़सरको इन दोनोंमें इस्तीफ़ा देनेका कोई कारण नहीं मिला।

मौंपेने अपने अफ़सरसे कहा,–"मैं अब न्यायकर्त्ताका कार्य नहीं कर सकूंगा"। इसपर विस्मित होकर अफ़सरने कारण पूछा। प्रत्युत्तरमें मौंपेने कहा, "किसी भी अपराधीके अपराध का विचार करनेका अधिकार मुझे नहीं है"। कर्मचारीको सन्देह हुआ, कि क्या मौंपे अकस्मात् पागल हो गया है ! उन्होंने बड़े शान्त भावसे कहा, "मौंपे ! तुम सरकारी नौकर हो। तुमने बहुत दिनोंतक सरकार का नमक खाया है और तुमने सरकार का मंगल मनाने की प्रतिज्ञा की है। सरकार-के लिये जिनसब कानूनों को मानना आवश्यक है, उनसब कानूनोंको तुम क्यों माननेके लिये तैयार नहीं हो ?"

इसके जवाबमें मौंपेने कहा, कानूनोंकी रक्षाके लिये सरकार को आदमिओंकी कमी नहीं रहेगी। **सत्यकी खोज करना ही प्रधान पुरुषार्थ है,** इसके बाद कोई दूसरा काम है।

'अफ़सरने कहा, क्या जिस समय तुम विवेक के अनुसार काम करते हो, उस समय सत्यका अनुसन्धान नहीं करते?'

मौंपेने उत्तर दिया,—"रात दिन अपने ही अपराधोंका विचार करना उचित है"।

अफ़सर साहब समझ गये, कि मैं व्यर्थही यह सब तर्क कर रहा हूं। वहां से जाते समय वे कहते गये, कि मुझे शङ्का हो रही है, कि तुम्हारा कोई मङ्गल नहीं होगा।

मौंपेका इस्तीफ़ा मंजूर हो गया। उन्हें कुछ भी पेन्सन नहीं मिली।

अब शहरके मकानका ख़र्च देनेमें मौंपे असमर्थ हो गये। सुख तथा शान्तिमय गृह और दास दासियोंको छोड़ते समय मौंपेकी धर्मपत्नी अपनेको रोक न सकी। पुत्रके भविष्यकी चिन्ता कर उसने मनही-मन अपने पुत्रको लक्ष्य कर कहा,—"तुम्हारे पिताके कारणही आज तुम्हारी यह दुर्दशा है।" कुछ व्यंग भावसे अपने पतिसे बोली,—"तुम्हारे शहर छोड़ देनेपर भी भिक्षुकोंके भोजनका अभाव नहीं रहेगा"।

स्वामीने इसके उत्तर में कहा,—"मैंने तो भिक्षुकों को कुछ दिया ही नहीं, जो कुछ दिया है सब अपनेको ही दिया है"।

मौंपेकी स्त्री इसबार बड़े ज़ोरोंसे फूट-फूट कर रोने लगी। कुछ दूर जानेके बाद मौंपेने पत्नीको रोना बन्द

करनेके लिये कहा । इसपर स्त्रीने कहा,—"तुम भला किस हृदयसे यह बात कह रहे हो ? तुम्हारे ही कारण तो यह सब हुआ" ।

मौंपे भी आत्म-संवरण नहीं कर सका । उसने बलपूर्वक स्त्रीका हाथ खींच कर कड़े शब्दोंमें उसे आगे बढ़नेको कहा ! हाथपर झटका और साथही-साथ कष्ट होनेसे स्त्री चौंक पड़ी । वह मुहूर्तभर कुछ नहीं बोली और स्वामी की ओर आँखें फाड़ कर चुपचाप देखती रही ; इसके बाद अपने अञ्चल से मुंह छिपाकर रास्ते के बगल में बैठ गयी । लड़का भी उसीके बगल में बैठ गया । वह रास्तेके बगल में जो फूलके पेड़ थे, उन्हीं से फूल तोड़-तोड़ कर अपनी माता की गोद में फेंकने लगा और बीच-बीच में बाल-सुलभ चपलता के साथ माता का अंचल हटा कर, माता का मुंह देखने की कोशिश करने लगा ।

मुहूर्त्त भरके लिये मौंपे किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गया । इसके बाद वह अपने लड़केका हाथ पकड़ कर बोली,—"चलो, हम दोनों यहांसे चलें" ।

लेकिन उनके हाथोंमें उस समय कुछ शक्ति नहीं मालूम होती थी, उसकी आवाज़में स्वाभाविकता नहीं थी । अब लड़का भी रोने लगा और अपनी माताके निकट चला गया । मां ने भी उसे अपनी छातीसे लगा लिया । इतनी देरमें मौंपे फिर अपनी असली हालत पर आ गया । उन्होंने सोचा, कि

"ऐसा करने से काम नहीं चलेगा। किसीके ऊपर निर्भर करनेसे कैसे काम होगा ? अकस्मात् स्त्रीने भी उसकी ओर देखा और पुत्र को स्वामी की ओर ठेल कर कहा, "अपने पिता के निकट जाओ। अब हम तीनों चलेंगे"।

मौंपे अपने पुत्रका हाथ पकड़ कर चुपचाप आगे बढ़ा और देहातके अपने मकानमें जा पहुंचा।

(२)

धान रोपनेके समय मौंपे परिवारके साथ अपने घर पहुंचा। सब आडम्बर छोड़-छाड़ कर मौंपे खेती का काम करने लगा; उसकी पत्नी घर-गृहस्थी के काम करनेमें लगी। मौंपेने समझा,—"इतना सुखी तो मैं किसी दिन नहीं था। खेती-बारी में जो ज़िन्दगी बिताता है, वही सबसे ज्यादा सुखी है। नोकरी छोड़ कर अपने घरपर आ, खेती करने में मुझे बड़ा आनन्द मिल रहा है"। यदि मौंपे इस समय स्त्रीके उदास मुख-मण्डल को नहीं देखता तो मालूम होता है, कि वह और ज्यादा सुखी होता। उनकी स्त्री का शरीर दिनों-दिन क्षीण होने लगा। लेकिन जिस समय अपने हाथका लगाया धान फल-भारसे अवनत हो खेतकी शोभा बढ़ाने लगा उस समय मौंपे अपनी स्त्रीके कातर मुखको देख कर मुग्ध नहीं होता था। वह सोचता था, खेतमें लगे हुए धानों की शोभा कैसी सुन्दर और पवित्र मालूम होती है। अब मैं विपद्से छुटकारा पा गया।

इतनेपर भी मौंपे बहुत दिनोंतक इस प्रकार सुख सम्भोग नहीं कर सका। नियत समयपर अच्छी वृष्टि नहीं हुई, धूपसे उसके खेतका धान सूख गया। जो थोड़ा-बहुत अन्न मिला, वह इतना नहीं मिला कि उससे सालभरकी खर्ची चल सके सुखके दिनोंकी जो कुछ उनके यहां स्थावर सम्पत्ति थी, उसीको बेंच बेंच कर खर्ची चलाने लगे। लेकिन इससे भी इनका कष्ट दूर नहीं हुआ। मौंपे और उनकी पत्नी दिनोंदिन दुर्बल होने लगी। अपने अनाहार रहकर, कष्ट झेल कर, अपने बच्चेका भरण-पोषण करने लगे।

एक दिन प्रातःकाल पुत्रने भोजन करनेसे अस्वीकार किया। दो पहर को उसे ज्वर हो आया। रातमें माता पिताको मालूम हुआ, कि अब यह नहीं बचेगा। माता घबराहट और निराशा से व्याकुल हो कर पुत्र की चारपाई के बगलमें बैठ कर रातभर बुद्ध भगवानको गोहराने लगी। उस समय उसको और कोई अवलम्ब नहीं था। बालककी अवस्था देख कर मौंपे किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गया, कि यह तो बड़ा भयङ्कर ज्वर है, इस ज्वरसे बच्चेके बचनेकी कोई आशा नहीं है, ऐसे ज्वर की हालत में एक दिनमें ही रोगीके प्राण-पखेरू उड़ जाया करते हैं यदि क़रीनेसे दवा दी जाती, अच्छे डाक्टरको दिखलाया जाता तो शायद बँचभी जाता; लेकिन वहाँ दवा या वैद्य कहाँसे आवे? जिन बेचारे गरीबों को पेटभर पथ्य भी नहीं मिलता, उन बेचारों को इस संसारमें डाक्टर और दवा कहाँसे मिल सकती है?

लेकिन आखिर तो माता का हृदय ठहरा! उस बेचारी से बर्दाश्त न हो सका, वह कह उठी,—हाय अगर कोई एक वैद्य आ जाता! किन्तु वैद्य को देने के लिये रुपये कहां हैं? हम लोगों के पास तो एक पैसा भी नहीं है।

मौंपे ने इस का कुछ भी जवाब नहीं दिया। उसकी पत्नी कहने लगी—"सुना है कि ऐसे ज्वर में क्विनाइन देनेसे बहुत फायदा होता है; केवल शहर के डाक्टरों के पास ही क्विनाइन मिलती है।"

इसपर मौंपे ने कहा—"अच्छा, देखता हूं, क्विनाइन मिलती है या नहीं"। इस के जवाब में मौंपे को स्त्री ने कहा—"तुम्हें क्विनाइन कहां मिलेगी, उसके लिये पैसे कहां हैं? तुमने तो अपना सर्वस्व दान कर दिया। इस पृथ्वी पर हमलोगोंके तो कोई हित-मित्र भी नहीं हैं"।

ऊपर की बातें कहते समय माता की छाती फटी जाती थी। मौंपे बोला—"देखता हूं शायद भीख माँगनेपर कुछ मिल जाय"। मौंपेका भी चित्त चंचल हो गया था; पर वह समझ रहा था, कि थोड़ीसी क्विनाइन नहीं मिलनेसे अपने लड़केसे हाथ धो बैठूंगा। पर इस समय क्विनाइन खरीदनेके लिये उसे रुपये कहाँसे मिले? वह बड़ी तेजीसे अपने घरसे निकल पड़ा, लेकिन धीरे धीरे उसके चलनेकी शक्ति कम होने लगी। आखिर, बड़े कष्टसे वह शहरमें पहुंचा।

अब उसके सामने यह सवाल आया, कि मैं इस समय

क्या करूं । क्या अपने पूर्व परिचितोंसे दो-चार आने भिक्षा मांगूं ! यह तो बिल्कुल असम्भव है । मौंपे—जिसने कुछ दिन पहले विचारकका आसन सुशोभित किया था—वही अपने हित-मित्रोंसे भीख मांगेगा ? यह तो होही नहीं सकता । तो फिर ! क्या वह रास्ते रास्ते घूम कर भीख मांगेगा और वहाँ लोगोंसे अपना परिचय नहीं देगा । जिसमें लोग उसे पहचान न सकें, इसलिये अपनी चादरसे मुखका थोड़ासा हिस्सा ढाँक कर मन्दिरके फाटकपर अन्यान्य भिक्षुकोंके साथ जा बैठा ।

उस समयके उसके मानसिक भावोंका वर्णन करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है । नाना प्रकारकी चिन्तायें एकके बाद दूसरी उनके मानस-पटपर अङ्कित होने लगीं । वे सोचने लगे,—"पुत्रके लिये मुझे दो-चार आने माँगने पड़ते हैं । यह क्यों ? निश्चय अपने जीवनमें मैंने कोई बड़ी भारी भूम की है । मैं यदि कम दान करता और अपनी नौकरी नहीं छोड़ता तो मुझे यह कष्ट नहीं भोगने पड़ता । लेकिन उस अवस्थामें मैं अपने परलोकके लिये कुछ नहीं कर सकता । स्त्री और पुत्रको सुख पूर्वक रखनेके लिये क्या मनुष्योंको

अपने परलोकके लिये चिन्ता करना अनुचित है? तथापि स्त्री-पुत्रका भरण-पोषण करना भी तो कर्त्तव्य है"।

मौंपे रो पड़ा। उस समय उसे मालूम होता था, मानो, उसके वक्षस्थल पर किसीने बहुत बड़े-बड़े पत्थर रख दिये हों। इस दारुण दुखसे उसे अपने छुटकारेका कोई उपाय नहीं दीख पड़ा। वह यह भी भूल गया, कि मैं इस मन्दिरके फाटकपर किस लिये बैठा हूं। उसने जो अपना हाथ फैला रखा था, उसपर अकस्मात् कुछ गिरा, वह चौंक पड़ा; हाथ पर एक पैसा था! उसने देखा, कि एक धनवती महिला, मन्दिरके बगलमें बैठ कर सभी भिक्षुकोंको कुछ दान कर रही है। उसने सोचा, कि दयावती महिलासे मैं अपनी सारी कष्ट-कहानी कहूं, तो वह शायद मुझे कुछ और दे सकती है। पर संकोचने उसे उस समय आकर चारों ओरसे घेर लिया "मैं कैसे भिक्षा मांगूंगा! भीख मांगना तो मैं जानता ही नहीं। लौटकर आवें, उनसे मैं अपनी सब हालत कह दूंगा, शायद मेरी हालतपर उसे कुछ दया हो"। लेकिन एक घंटा बीत गया, तोभी वह दयावती महिला लौट कर नहीं आयी। अन्तमें मौंपे मन्दिरके भीतर उस महिलाकी खोजमें गया। वहां भी वह नहीं मिली। वह मन्दिरके दूसरे दरवाजेसे बाहर चली गयी थी। जहां पहले बैठा था, वहीं आकर फिर मौंपे बैठ गया। पर कुछ आशा नहीं

दिखाई दी । एक अवर्णनीय भयसे उसका हृदय काँप गया । वहां अपनी आँखोंके सामने मृत पुत्र और रोती कलपती स्त्री को देखने लगा । क्या करें ! बड़ी निराशासे वह चारों ओर देखने लगा ।

इसी समय अपने निकट बैठे हुए एक भिक्षुकके ऊपर उसकी दृष्टि पड़ी । वही भिक्षुक, वृद्ध था ।

भिक्षुकने पूछा,—" इसके पहले तो मैं तुम्हें कभी यहाँ नहीं देखता था । तुम पहले कहाँ बैठते थे ? "

मौंपेने थोड़ेमें उत्तर दिया - ' कहीं नहीं " ।

"ज़रूर तुम यहां नहीं तो कहीं दूसरी जगह बैठते होगे ?"

मौंपेने मस्तक झुका कर कहा, " नहीं " ।

मानो, भिक्षुक उसके मनका भाव समझ गया, बोला,— " ओ ! तुमने अभी नया यह काम शुरू किया है । समझ गया । देखो, संसारमें जितने व्यापार हैं, उन सभी व्यापारों में इस व्यापारका प्रारम्भ अत्यन्त कठिन है " ।

"क्या तुमलोग भिक्षाको भी व्यापार समझते हो ?" । क्या बोल रहाहूं, इसका मौंपेको कुछ भी ख़याल नहीं था । इससमय वह जो यातना भोग रहा था, उसी यातनाकी यंत्रणा कम करनेके लिये वह भिक्षुकसे बात चीत कर रहा था । भिक्षुकने उत्तरमें कहा,— ' बहुत बढ़िया, यह व्यापार नहीं तो और क्या है ? भिक्षा मांगनेका काम भी सीखना पड़ता है" ।

भिक्षुककी इस बातको सुनकर मौंपे स्तब्ध हो गया । भिक्षुक कहने लगा " आजसे दस-बारह वर्ष पहले, जब मैंने

भिक्षा वृत्ति प्रारम्भ कीथी, उस समय मुझे यह नहीं मालूम था, कि किस तरह भीख माँगना होता है । मैं समझता था, कि जितना ही मैं चाहूंगा उतनाही अधिक पाऊंगा । रोगी स्त्री और अपने पेटके लिये अन्नका प्रबन्ध भिक्षा द्वाराही मुझे करना पड़ता था । मैं खुद भी बीमार था । मैं पहले भिक्षा के लिये नहीं निकलता था । मेरी स्त्री, भूखसे तड़प-तड़प कर मर गयी । शहरोंमें प्रायः ऐसा ही होता है ; पर देहातों में यह दृश्य नहीं देखनेको मिलता । आखिर सभी मरते हैं, इसीसे वह भी मर गयी । इसमें हमलोगोंका कुछ बश नहीं चलता । लेकिन जब मेरी स्त्री मर गयी, तब मैं रास्तेके बगलमें बैठकर सोचने लगा, कि मैं सबलोगोंकी आँखोंके सामनेही भूखसे तड़प-तड़प कर अपना यह शरीर त्याग कर दूंगा । किन्तु बड़े आश्चर्यकी बात है कि उसी समय एकके बाद एक पैसे मेरे सामने गिरने लगे और सन्ध्याके समय बहुत दिनोंके बाद उन्हीं पैसोंसे मैंने भरपेट भोजन किया । जिस समय मैं भोजन कर रहा था, उस समय मालूम होता था मानो मैं अपनी स्त्री के श्राद्ध का न्योता खा रहा हूं । उसके बादसे फिर मुझे कभी भूखा नहीं रहना पड़ा । भिक्षा का कौशल मैं तुम्हें बताये देता हूं । तुम कुछ मांगना नहीं, तुम्हें कुछ भी अभाव नहीं होगा " ।

इस बूढ़े भिक्षुककी बातोंपर मौदका ध्यान न था । अपने

रोगी पुत्रका आर्त्तनाद उस समय उसके कानोंमें गूंज रहा था कि वह एक क्षण भी वहां व्यर्थ नहीं बैठे रह सकते थे । सन्ध्या का समय निकट है और अबतक एक पैसेके सिवाय उसे कुछभी नहीं मिला । किसी उचित व्यक्तिसे कुछ माँगनेकी इच्छा नहीं हुई । इस समय वह कुछ निर्णय नहीं कर सकताथा कि अब मैं क्या करूं ? अव्यवस्थित चित्तसे वह दौड़ते चला गया । सामने ही एक महाजन की दूकान थी ; वहां थोक के थोक रुपये अठन्नी, चवन्नी, दुअन्नी और पैसे रखे हुए थे । उन्हें देखकर उसने कुछ किया, क्या किया उसे वह समझ नहीं सका ।

चारों ओरसे लोगोंने चोर-चोर शब्दकी आवाज़ लगाई । कुछ आदमियोंने उसे पकड़ लिया । दिनके समय सब लोगों-के सामने चोरी ! यहतो डकैतीसे भी बढ़कर भयङ्कर है ! मौंपेके ऊपर अब लात, जूता, छड़ी, थप्पड़ आदिकी बर्षा होने लगी ; मौंपेने समझा कि अब जान नहीं बचेगी । इसी समय एक आदमीने उन्हें पहचानकर कहा, ये तो दरिद्रोंके सहायक मौंपे हैं । उसी समय एक कान्सटेबिल आकर उन्हें थानेमें ले गया । थानेका दारोगा एक टेबिलके सामने बैठकर कुछ लिख पढ़ रहा था । कान्सटेबिल की ओर बिना देखे हुए ही उसने पूछा कि क्या बात है ? कान्सटेबिलने सब समाचार कह सुनाया । यहतो बड़े आश्चर्यकी बात है—कहकर दारोगाने अपराधी की ओर देखा । मौंपे चुपचाप शून्य हृदयसे देख रहा

था। दारोगाने पूछा—मौंपे! तुम हो! आप हैं! बैठिये, क्या हुआ है, सो सब मुझसे कहिये।

दारोगा कई बार मौंपेके इजलास में मुकद्दमा फैसलाके लिये ले जा चुके थे।

सामनेके एक आसन पर मौंपे बैठ गया और वह अपने दोनों हाथोंसे अपना मुंह छिपाकर रोने लगा। वह अपने मनोवेगको रोक नहीं सकता था। कुछ देर मौन रहनेके बाद दारोगाने पूछा क्या हुआ है, मुझसे कहिये। अब मौंपेने शुरुसे लेकर आखिर तक की सब बातें कह सुनायी। दारोगा उन्हें सुनने लगा। दारोगा होनेपर भी उसकी आंखोंमें आंसू दिखाई पड़े। सब सुनकर उसने कहा, "जिसे स्त्री-पुत्र हो उसको ऐसा करना उचित नहीं है। पर यह उपदेश देनेका समय नहीं है। आपके पुत्रकी शुश्रूषा ही इस समय करनी होगी। इसमें कुछ सन्देह नहीं, कि आप अब यह जगह नहीं छोड़ सकेंगे। पर आपके छुड़ाने और आपके लड़केकी सेवा शुश्रूषा करनेके लिये मैं अपनी शक्तिभर कुछ उठा न रखूंगा। मैं आपका मकान पहचानता हूं"।

तब मौंपे दारोगाको धन्यवाद देने लगा, तब दारोगा ने उसे मनाकर कहा—"धन्यवादकी आवश्यकता नहीं है। इस समय आपको हाज़तवाले कमरेमें रहना होगा; पर आप निश्चिन्त रहिये, कल प्रातःकाल ही आप छूट जायेंगे"।

मौंपे अन्धकारपूर्ण हाज़तमें डाल दिया गया। वहांपर वह

तरह तरहकी बातें सोचने लगा। उसे सर्पका बड़ा भय था। अगर इस कमरेमें सांप रहता होगा, तो बड़ी मुश्किल होगी। अकस्मात् उसे ऐसा मालूम हुआ कि मानो, मैं फिर उसी मन्दिरमें भिक्षाके लिये गया हुआ हूं; मानो वही वृद्ध भिक्षुक, फिर मेरे निकट बैठा हुआ है। भिक्षुककी बातें बार बार उसके स्मृतिपटपर अंकित होने लगी। "तुम कुछ मत चाहो तो तुम्हें किसी पदार्थ का अभाव नहीं रह जायेगा"।

सचमुच तो, सत्यको प्राप्तिके लिये सब कुछ का त्याग करना ही होगा। जब कोई अपनी आत्मा का त्याग करने के लिये प्रस्तुत हो जाता है तभी वह सत्यका पता पाता है। असल बात है! दारोगाने कहा है, कि जिसको स्त्री-पुत्र हो, उसको ऐसा नहीं करना चाहिये। ठीक है, ठीक है, मेरे ही सोचने में भूल हुई है।

दूसरे दिन सन्ध्याके पहले मौंपेको छुटकारा हुआ। वह कारागारसे बहुत भयार्त्त होकर बाहर निकला। उस समय उसे ऐसा मालूम होने लगा, मानो सभी उसकी ओर घूर रहे हैं। इसी एक रातके भीतर उसमें घोर परिवर्त्तन हो गया है। जब वह अपने मकानके दरवाजे पर पहुंचा, उस समय उसकी दूसरी दूसरी चिन्तायें दूर हो गयीं; वह सोचने लगा कि इस समय घरमें मेरी स्त्री क्या कर रही है! इस

समय या तो वह मृत पुत्रको लेकर बैठी होगी, या तो क्यों, निश्चय यही होगा।

अत्यन्त वृद्ध जरा-जीर्णकी तरह वह अपने घरके भीतर घुसा। वहां जाकर उसने देखा कि पत्नी पुत्रको दूध और साबूदाना खिला रही है। मुहूर्त भरतक वह कोई बात नहीं बोल सका। उसको देखकर उसकी स्त्री पुत्रको गोदमें लिये हुए उसके निकट आयी और बोली, "तुम आगये औफ़! मैं बड़े कष्टमें थी! कल सन्ध्याके समय तो ऐसा मालूम हुआ, मानो सर्वनाश हुआ! पर उसी समय तुम्हारा मित्र दारोगा मौंटक्र आ पहुंचा और साथमें किनाइन लिये हुए आया। थोड़ीही देरके बाद वे चले गये और तुरत ही अपने साथमें वैद्य लेकर लौट आये। बुद्धदेवके समान उन्होंने हमलोगोंके सारे कष्टोंको दूर कर दिया। वे कितने बड़े दयालु हैं!"। इतना कह कर वह अपने पुत्रका समयोचित लाड़-प्यार करने लगी। उसके आनन्द-उत्फुल्ल मुख-मण्डलको देख कर मौंपेने समझा, कि आज मेरी स्त्री जैसी सुन्दरी और सुखी मालूम होती है, वैसी सुन्दरी और सुखी, यह आजके पहले कभी नहीं मालूम होती थी।

मौंपेने उसकी बातोंका कुछ जवाब नहीं दिया; उसने अपने पुत्रका लाड़-प्यार भी नहीं किया। इस समय वह दारुण मानसिक पीड़ासे व्याकुल हो रहा था। उसे ऐसा मालूम होने लगा, मानो, स्त्री, पुत्रके साथ वह मकान, उसे बांध रखे हुए है। कुछ देरके बाद पुत्र रोने लगा।

पथ्य देनेलगी, पथ्य देते समय वह बोली, "बहुत देरसे इसको ज्वर नहीं था। अभी यह बहुत दुर्बल है। अभी खड़ा होनेकी इसमें ताक़त नहीं है; लेकिन अब किसी बातका भय नहीं है।" इतने पर भी मौंपे कुछ नहीं बोला। वह यह भी समझ रहाथा, कि मैं मौन रह कर अच्छा नहीं कर रहा हूं। अन्तमें उसने अपनी स्त्रीसे कहा—"मैं बहुत थक गया हूं और अब सोना चाहता हूं। यह कह कर वे चारपाईपर जाकर सो रहे। नींद आनेके पहले ही उसने देखा, कि स्त्री, पुत्रको सुला रही है और धीमी-धीमी थपकियोंके साथ कुछ धीरे धीरे गा रही है। मौंपेने इधर बहुत दिनोंसे अपनी स्त्रीके मुंहसे कोई गाना नहीं सुना था।

बहुत रात बीत जाने पर मौंपे की नींद टूटी। चांदनी रात थी; खिड़की के द्वारा चन्द्रमा की किरणें भीतर कमरे में आ रही थीं; उसकी स्त्री, अपने पुत्र को छाती से लगा कर निश्चिन्त चित्त से सो रही थी। पत्नी और पुत्र के मुख-मण्डल हर्षोत्फुल्ल थे। उन्हों ने बहुत दिनों से अपने पुत्र और स्त्री के मुख पर ऐसी प्रसन्नता की झलक नहीं देखी थी।

मौंपे चारपाई पर से उठ कर बोला। चन्द्रमा की किरणें कैसी मनोहर और स्निग्ध हैं। रात ठीक दिन की तरह मालूम हो रही है। आज को मानो सभी चीज़ें मौंपे दिव्य चक्षु से देख रहा हो! सभी वस्तुएं कुछ आश्चर्य्यजनक मालूम हो रही हैं। क्या इसके पहले उसने चन्द्रमा के आलोक में अपनी स्त्री और

पुत्र को नहीं देखा था ! आज उसकी आंखों में सभी अपरिचित से मालूम होने लगे। पुत्र, माताके हृदय से लगा हुआ, माता-के गलेको पकड़ कर निश्चिन्त हो सो रहा है। माता पुत्रको हृदयसे लगा कर प्रसन्नता के साथ सो रही है। इन दोनोंके बीच मौंपे के लिये जगह नहीं है—इन दोनों से उसका सम्बन्ध ? पर उसके मनमें होने लगा, कि तृतीय व्यक्ति के लिये शायद दूसरा कोई स्थान है। उसने बड़ी शीघ्रता से शय्या त्याग कर, स्त्री और पुत्र की ओर बिना देखे हुए ही सदा के लिये अपना गृह त्याग दिया। उसका सन्न्यास आरम्भ हुआ।

(३)

मौंपेने जब संन्यास ग्रहण किया, तबसे चार वर्ष बीत गये। मौलमिन के मठ में वह आत्म संयमकी पराकाष्ठा दिखा रहे थे। परन्तु मौंपे किस आशासे यह सब कर रहे थे ? आखिर इस प्रकार उनके कष्ट स्वीकार करनेका क्या उद्देश्य हो सकता था ? मौंपे क्लेशसे छुटकारा चाहता था। वह दुःखके हाथों से अपनी मुक्ति चाहता था क्योंकि जो अनित्य वस्तुओं के सम्बन्ध में चिन्ता किया करते हैं, उनका जीवन दुःख-

मय हो जाता है। वह कुछ भी नहीं चाहता—वह चाहता है केवल उसी दुःखसे अपना परित्राण। और केवल वही उस दुःख से छुटकारा पा सकता है, जो केवल स्त्री और पुत्रका परित्याग करके ही निश्चिन्त नहीं रहता, किन्तु जो अहंकारका भी परित्याग कर देता है, वही इस संसारके दुःख से छुटकारा पाता है। अवश्य ही उसको यह अहङ्कार परित्याग करना होगा, अहङ्कार को अस्वीकार करना होगा।

मौंपे रात दिन इसीके लिये प्रयास करने लगा। परन्तु जिस प्रकार जल, नीचे की ओर जाना चाहता है, उसी प्रकार बीच बीचमें, वह जिनको अपना समझता था, अपना जानता था, उनकी बातें स्मृति-पथमें आने लगीं। परन्तु जीवनके प्रति ममत्व प्रदर्शन करना और दुःखके साथ संलीन रहना एकही बात है। अक्सर वे नैराश्यके समुद्रमें डूबने-उतराने लगते थे—सोचते, मालूम होता है, कि कूल रहित इस भव-सागरके घटवारको मैं नहीं पाऊंगा। पर, न मालूम कौन उनको कहता था,—"खोदो ! खोदो !! और भी नीचे खोदते

खोदते मीठे जलका पता पाही जाओगे।

एक दिन भिक्षा के समय उसने मन्दिरके बगलमें हजारों यात्रियों का देखा; वैशाखका महीना और मेलेका समय था; इसीसे मौलमिनके तीर्थ क्षेत्रमें बहुतसे यात्रियोंका समागम हुआ था। अपने अपने गाँवसे झुण्डके झुण्ड यात्री, तीर्थ दर्शन करने आये थे। मोंपे चुपचाप प्रत्येक दलके यात्रियोंके सामने भिक्षाका पात्र लेकर पहुंचने लगा। भिक्षाका अभाव नहीं था। भिक्षा पाकर विना कृतज्ञता प्रकट किये ही, अपनी आखं नीचे किये हुए, मौंपे एक दलसे दूसरे दलके सामने जाने लगा। भिक्षाका पात्र, करीब आधाके, पूरा हो गया, और थोड़ा सा मिल जाने पर ही उसकी उस दिन की भिक्षा पूरी हो जायगी। वह एक दूसरे दलके यात्रीके पास गया।

मौंपेको देख कर किसीने बड़े कोमल स्वरमें कहा,—"माँ, इस भिक्षुकको मैं कुछ दे दूं"। इच्छा न रहने पर भी—उदासीन रहने पर भी—उक्त सुपरिचित स्वरको सुनकर वह चौंक पड़ा। आंखें उठा कर उस ओर देखा और फिर आंखें झुका लीं। उनके सामने ही उनकी स्त्री, उन्हींका पुत्र, और उन्हीं का मित्र दारोगा मौंटक खड़े थे। उसकी स्त्रीकी गोदमें भी एक लड़का था।

पुत्रके लिये उसके प्राण रो उठे। भिक्षापात्र दूर फेंक

कर पुत्रका आलिंगन करें या यह स्थान छोड़ कर अलग हट जायें, इसका कुछ निर्णय नहीं कर सका । पर, मौंपेको कोई नहीं पहचान सका । क्योंकि, किसीकी धारणामें यह बात नहीं आ सकती थी कि यह दुबला पतला मुण्डित-मस्तक, भिक्षुक न्यायाधीश मौंपे हो सकता है ।

पुत्र भिक्षाके पात्रमें प्रचुर भोजन सामग्री दे रहा था । मौंपेने सुना कि उसकी स्त्री बोल रही है, कि "पुत्र! दानमें भी परिमित होना आवश्यक है । मौंपे समझ गये, कि इस स्वरमें तिरस्कार की बात नहीं थी । मौंटकने कहा,—प्रियतमे ! उसके इस काममें रुकावट मत डालो ; हमलोगों को किसी चीज़की कमी नहीं है ; बहुत है ; संन्यासीको नहीं देंगे, तो किसको देंगे ? इतना कह कर मौंटकने गोदके लड़के को प्यार किया । स्नेह-भरे शब्दोंमें सन्तानकी माता को पत्नी कह कर आदर किया । बालक दौड़कर मौंटकके सामने चला गया और बोला "मुझे भी प्यार करो, पिता" । मौंटक उस सुसज्जित और सुदर्शन बालकका भी आदर करने लगा ।

वह स्थान छोड़ कर जानेकी शक्ति मौंपेमें नहीं थी । परन्तु उसको कोई लक्ष्य नहीं करता था । उसको भिक्षा दी गयी है, संन्यासीके प्रति गृहस्थका कर्त्तव्य पूरा हो गया है । धीरे धीरे मौंपे, वहस्थान परित्याग कर, पर्वतकी जिन गुफाओंमें भिक्षु लोग निवास करते थे, इन्हींमेंसे एकमें

चला गया ; गुफाके भीतर घोर अन्धकार का साम्राज्य था । वहां जाकर वह योगासन पर बैठ गया और आपही आप कहने लगा, "यह जीवन मेरे लिये भार हो रहा है ; अब इस जीवनका बोझ मुझसे ढोते पार नहीं लगेगा । इस भरे हुए भिक्षा के पात्रको अपने सामने रखकर उपवास द्वारा अपना प्राण त्याग करुंगा ।" इस समय बुद्ध भगवानके अनशन-व्रतकी बात उसके हृदयपट पर अंकित हो रही थी ।

इसके बाद उसने जप करना आरम्भ किया । घण्टे पर घण्टे बीतने लगे । वह मृतककी तरह वहीं बैठा रहा । उसी अवस्थामें दिन बीत गया ; रात आयी ; गुफामें फिर अन्धकार का पूर्ण साम्राज्य छा गया । गुफाके बाहर चांदनी छिटक रही थी ; चांदनी की रौशनी में भिक्षाका पात्र स्पष्ट दिखायी दे रहा था । पर्वतके आसपास की बन-भूमिकी निस्तब्धता भंग कर व्याघ्रका शब्द मौंपेको सुन पड़ा ; लेकिन उसपर उसने कान नहीं दिया । गुफाके सामनेवाले वृक्षके ऊपर मानो कोई चढ़ रहा है, ऐसा मालूम हुआ ; हिंस्र पक्षी चिल्लाने लगे ; उस चिल्लाहटको भी सुन कर मौंपे विचलित नहीं हुआ । हाथियोंका समूह, बन-

भूमिको पद दलित करता हुआ, आगे बढ़ा ; तथापि मौंपेने उस ओर ध्यान नहीं दिया । अन्तमें गुहाके भीतर जो पत्तियां पड़ी हुई थीं उनपरसे मर मर शब्द सुन पड़ा ; शब्दके साथ ही ऐसा भी मालूम हुआ, मानो, कोई गरम और लम्बी सांस ले रहा हो । इस बार मौंपे संकुचित हुए ; वे समझ गये, कि यहां कोई सर्प आ गया है । उसने देखा, कि चन्द्रालोकसे आलोकित गुफाके भीतर, उसके भिक्षा पात्रके पासही बड़ा भारी साँप फुफकार छोड़ रहा है ; उसने अपनी करगा फैलायी; इसबार उन्हें मालूम हुआ, कि यह साँप किस जातिका है । ब्रह्मदेशमें इससे बढ़ कर भयंकर जहरीले साँप दूसरे नहीं हैं । सर्प पात्रके अन्नको खाने लगा । जिस अन्नको मौंपेके पुत्रने दिया था वह अन्नभी इसीमें था । थोड़ेही देरके बाद सर्पने खाना छोड़ दिया । कुछ ही मुहूर्तों में वह वहां से गायब हो गया । उसके थोड़े ही देरके बाद मौंपेने अपने बहुतही निकट फिर कुछ शब्द सुना । कोई ठण्ढी चीज़ उसके अनावृत पांवों पर चढने लगी । मौंपेने चाहा, कि अभी कूद कर वहांसे हट जाऊं और सांपको अपने पांवसे अलग कर दूं । लेकिन ऐसा करनेका उसे साहस नहीं हुआ । जिस जातिका वह सर्प था, उस जातिके सर्प बड़े ही भीषण होते हैं, काटने में जरा भी इधर उधर नहीं करते । भयसे भीत होकर, चिल्लानेकी उनकी इच्छा हुई । तथापि वह निश्चल होकर

बैठा रहा। फिर उसे ऐसा मालूम हुआ मानो, सांप उसकी गोदमें बैठ गया; दूसरे ही क्षणमें ऐसा ज्ञात हुआ, मानो वह अपना मस्तक उठा कर, मौंपेके बक्षस्थल पर आघात करेगा। तथापि वह निश्चल रहा; क्योंकि जरा भी हिल-डोल करने पर मृत्यु अनिवार्य थी। सर्पको करगा उसीके सामने हिल डोल करने लगी। आखिरमें फिर साँप उसकी गोदमें चुप-चाप बैठ गया; उसके दोनों हाथोंके ऊपर उसने अपनी देह छोड़ दी।

घण्टेके बाद घण्टे बीत गये—मौंपे और सर्प दोनों निश्चल बैठे रहे। पर इतनी देरमें मौंपेका भय दूर हो गया था। शरीरमें रक्तका संचालन बन्द हो गया था। धीरे धीरे फिर रक्तका संचालन आरम्भ हो गया। उसका उद्भ्रान्त मस्तिष्क फिर प्रकृतिस्थ हो गया। सर्पने निद्रितावस्थामें उसकी गोद पर अपना अधिकार जमा लिया है। बहुत देर तक मौंपे उसकी ओर देखते रहे। सोचा,—"मनुष्य कितना निर्बोध है! जब मैंने सामने भिक्षापात्र रख कर अपनी इच्छासे उपवास द्वारा शरीर त्याग करनेका निश्चय कर लिया तब यह जन्तु मेरे निकट आया। इस समय कहां इसे एक सान्त्वना देनेवाला और रक्षा

कर्ता समझ कर, इसका स्वागत करना चाहिये था और कहां ऐसा न कर अहं-कारके फेरमें पड़कर मैं भयभीत हो गया। ऐसी घटनाएं हमलोगोंकी मूर्खताके कारण ही हुआ करती हैं। हमलोग भयको पराजित करनेकी चेष्टा करते हैं, इतने पर भी. प्रति-दिन एक न एक नया भय और नयी चिन्ता बनी ही रहती है। जब तक मनुष्य सभी भयोंके मूलको नहीं जानेगा, तबतक वह कैसे शान्ति पावेगा? विना सभी आ-शङ्काओंके दूर किये शान्ति किस प्रकार प्राप्त की जासकती है? इसलिये पहले इस अहं-भावको जरूर दूर करना होगा। सभी आशङ्काओंके बीजोंको पद-दलित करना होगा। तभी शान्ति, निरुपद्रवता और स्वाधीनता प्राप्त होगी।" फिर उसके मनमें अनित्यता की चिन्ताका उदय हुआ। उसे पूर्वापेक्षा और

अधिक स्वच्छताके साथ सभी पदार्थोंका प्रवाह दिखाई पड़ा—इस पृथ्वीकी वाह्य प्रकृतिका नीरीक्षण करनेमें समर्थ हुआ। वह अपने मनमें सोचनेलगा, कि जब यह पृथ्वी ही अनित्य है, और भ्रान्तिमय है, तो यह अहंभाव भी मोहमय है; यह भ्रान्तिके सिवा और कुछ नहीं है। मौंपे प्रशान्तभावसे हंसने लगा। एक अज्ञात निर्मलतासे उसका हृदय परिपूर्ण हो गया। **इस अनित्यका स्वरुप जान लेने पर शरीर परित्याग करनेके सिवा सुखकर विषय और क्या हो सकता है ?** "मेरे सामने यह पृथ्वी कुछ नहीं है" यह बात बार बार अपनी आत्माको जना देनेकी अपेक्षा और सुखकर क्या हो सकता है? अकस्मात् मौंपेको बहुत क्रान्ति मालूम हुई—वह अपनी गोदमें बैठे हुए सांपके साथ ही सो गया। जिस मनुष्यने ममत्वका परित्याग कर दिया है, वह अपनी गोदमें सांपको लेकर, चिन्ता रहित होकर सुख पूर्वक निद्राका भोग कर सकता है।

उसी अवस्थामें मौंपेने स्वप्न देखना आरम्भ किया। एक स्वप्न देख रहा था, कि मैं जाग्रत हो गया हूं। पहले उसे चिन्ता हुई, कि मैं जागता हूं या स्वप्न देख रहा हूं। वह गुफामें चारों ओर अपनी दृष्टि दौड़ानेलगा। "यही तो सुखी हुई पत्तियां पड़ी हैं, गुफाके बाहर वह भिक्षा का पात्र ज्योंका त्यों पड़ा है, और मेरी गोद में सांप सो रहा है"। उसने जिस समय

साँप की ओर देखा, उसी समय जाग्रत हो कर साँपने भी उसकी ओर देखा। धीरे २ फिर उसने अपना मस्तक उठाया। मालूम हुआ, मानो, साँप बहुत मोटा हो गया है। साँपने उसकी ओर अपनी जीभ निकाली। मौंपे, प्रशान्त चित्तसे उसकी ओर देखने रहा; वह सोचने लगा, कि एक शब्द कहने में जितना समय लगता है, उससे कम समय में साँप अपने दाँतोंके आघातसे मेरे इस शरीरको विनष्ट कर सकता है। पर इसका मतलब क्या है? क्या दूसरे तरहसे इस शरीर का नाश नहीं होगा? इससे डरने की कौन बात है? जो मर सकता है वह तो मरही गया है। मैं कैसा सौभाग्यवान हूं? मैं जीवन्मुक्त होनेका स्वाद, जाग्रतावस्था में ही भोग रहा हूं। धीरता पूर्वक प्रशान्त-चित्तसे वह साँपकी चमकीली आँखों की ओर देखने लगा। उस समय उसने देखा, कि जिसको मैं सांप समझ रहा था, वह सांप नहीं वल्कि मेरा ही पुत्र है—मेरा ही यह सुन्दर सुडौल पुत्र है। पुत्र मेरी ओर देख कर हंस रहा है। परन्तु मौंपेने अपने पुत्रकी ओर देख कर हँसा नहीं। उसने सोचा, कि यह जो मेरा औरसजात पुत्र है,—यह कहाँसे आया, नहीं जानता। यह भी नहीं जानता, कि फिर यह कहाँ चला जावेगा। जिस समय वह ऐसी चिन्ता कर रहा था, उसी समय वह क्रमशः

ऊपरकी ओर उठने लगा। वह बढ़ते बढ़ते अदृश्य हो गया। कन्दरा कुहासा युक्त आलोकसे भर गया और अकस्मात्

पद्मासनासीन उज्वल स्वर्गीय वस्त्र पहने तथागत उसके सामने दिखाई पड़े। पद्मासनसे लेकर सारा शरीर उस दिव्य पुरुषका कुहासा से घिरा हुआ था।

मोंपे निर्विकार चित्त से इस मूर्ति की ओर देखते रहा। वह सोचने लगा, कि यह क्या? मुझेतो कुछ भी प्रसन्नता नहीं हो रही है! पर यहां तो मैं अपना ममत्व परित्याग कर दिया है! फिर मेरे लिये इसमें आश्चर्यान्वित होनेकी कौन सी बात है? मैं प्रसन्न क्यों होने लगा? यहां कोई आश्चर्यान्वित और आह्लादित होने का पात्र नहीं है।

जिस समय मोंपे ऐसी चिन्ता कर रहा था, उसी समय **तथागत** अन्तर्धान हो गये और इस समय मौंपेने देखा, कि गुफाके द्वारसे प्रभात-कालीन सूर्य की किरणें उसके शरीर पर आकर पड़ रही हैं। उसने अपनी गोद की ओर देखा,—गोद खाली पड़ी थी। मौंपे स्वप्न देख रहा था, यह मानो उसे ठीक नहीं मालूम हो सका। कन्दरेके बाहर भिक्षाका पात्र पड़ा हुआ था। सोचा,—"यहां किसलिये बैठा हुआ हूं? यहांसे उठ कर भिक्षाके लिये बाहर निकलने का समय हो गया है"। पर उस समय भी अपने को निद्रातुर समझ रहा

था। वह जल्दीसे उठ कर भिक्षा पात्र ग्रहण करने के लिये पात्र के निकट उठ कर आया। उस समय तक वह पात्र भोज्य पदार्थोंसे भरा हुआ था। वहीं खड़ा होकर एक मुहूर्त तक सोचा। इसके बाद नत होकर भिक्षापात्र में रखे हुए अन्न को सूंघा—उस अन्नसे दुर्गन्धि आरही थी। अब उसे मालूम हुआ कि वास्तव में साँपने इस पात्रके कुछ अन्नको ग्रहण किया है। सर्प जिसको जूठा बना देता है, वह दुर्गन्ध हो जाता है। उसने बड़े यत्नके साथ अन्न को फेंक कर, भिक्षा पात्र को लेकर नत-मस्तक हो, प्रति दिन के नियमानुसार शहरको चल पड़ा।

जिसने ममत्व का परित्याग कर दिया है, वह अमृत की भी आकांक्षा नहीं करता; अपने जीवन के प्रति भी उसकी स्पृहा नहीं होती। और धीर भाव और निर्विकार चित्त से उसी समय के लिये अपेक्षा करता है।

इस प्रकार मौंपे ने प्रकृत संन्यास का अवलम्बन किया।

——— ———

निर्वाक नल।

कान्दि नामक नगर में बुद्ध का एक दन्त-मन्दिर है। उसके पासही एक बनिया रहता था। राजमार्ग पर उसकी जो दूकान थी, उसीकी आमदनी से उस बनिये की जीविका चलती थी। साधारण बनिये की तरह, वह बनिया ठग नहीं था। साधुता ही उसकी पथ-प्रदर्शिका थो।

मृत्यु को सन्निकट देख, उसने अपने पुत्र को बुलाकर कहा,—"नल! तुम्हारी माता और बहनों का शरीरावसान हो गया है; उन लोगोंने अब दूसरा जन्म ग्रहण कर लिया है। मेरे इस शरीर के भो अवसान होनेका समय समीप आगया है। यद्यपि मेरे निर्वाण में अभी बिलम्ब है, पर शरोर छूटने का समय दूर नहीं है। मैं अपनी अतुल धन राशि, दन्त-मन्दिर में दान कर दूं या तुम्हारे लिये रख जाऊं, इस विषय में वहुत विचार किया है। आज से कुछ दिन पहले, जब मैंने तुमसे इस सम्बन्ध में राय मांगी थो, तो तुमने सब भार मेरे ऊपर छोड़ दिया। तुम्हारे इस व्यवहार से मैं बहुत सन्तुष्ट हुआ हूं। मुझे मालूम हो गया है, कि तुम दान देने में कृपणता नहीं करोगे। उस पर से तुम विचारशील भो हो। मैं अपना सर्वस्व तुम्हारे ही हाथों में सौंप जाऊँगा, जिससे तुम्हें किसी चीज़ की कुछ भी कमी नहीं रहे। मुझे पूरा भरोसा है, कि तुम भगवान के ध्यान में अपना समय बिताओगे।

अर्थाभाव होने पर भगवान की चिन्ता नहीं होती । पर मुझसे तुम्हें दो प्रतिज्ञाएं करनी होगीं । पहला,—"**जिसके लिये कोई चीज भी प्रिय नहीं है, उसके लिये कोई भी वस्तु क्लेशकर नहीं है**"— सर्वदा तुम बुद्धके इस उपदेश का स्मरण रखना और दूसरा,—"**किसी स्त्री से कुछ मत पूछना ।**"

पुत्रने अपने जीवन भर इन दोनों आज्ञाओं का पालन करने की प्रतिज्ञा की ।

इसके बाद उसके पिता कहने लगे,—"यदि अपना सर्वस्व मन्दिर में दान कर देता तो पुनर्जन्म ग्रहण करने में मुझे सुविधा होती परन्तु वैसा नहीं किया, मैंने तुम्हे अपना सर्वस्व दान कर दिया, इसीसे तुम्हें इन दो प्रतिज्ञाओं में आवद्ध होना पड़ा। तुम्हें मालूम है, कि मृत्यु से पिता-पुत्र अलग-अलग हो जाते हैं और हमलोगों के साथ, अपना-अपना कार्यफल ही जाता है। तुमको मैंने जो उपदेश दिये हैं, उन उपदेश के अनुसार तुम काम कर सकते हो और उसके विरुद्ध भी कार्य कर सकते हो। मैंने जो व्यवसाय अवलम्बन किया था, उसे तुम छोड़ दो। अपने कार्यफल से ही मैंने विवाह कर संतानादि लाभ किये थे, और उन लोगोंका प्रतिपालन करने के लिये ही यह व्यवसाय शुरु किया था पर कृषि कार्य ही

सब की अपेक्षा अच्छा है। कृषि के द्वारा ही संसार में साधुता के द्वारा मनुष्य जीविका निर्वाह कर सकता है"।

पुत्रने अपने पिता के इस सलाह के मताबिक काम करने का वचन दिया।

कुछ दिनों के बाद वृद्ध मृत्यु के ग्रास में पड़ गया। पुत्र ने पिताका दाह क्रिया यथोचित रूपसे पूरी की। जीवन को अनित्य समझ कर पुत्र ने पिताके लिये अधिक शोक नहीं किया। इसके बाद पिता के कार बार को बेंच-बांच कर छोटा एक मकान और उसके निकट ही थोड़ी सी ज़मीन खरीद कर अकेला रहने लगा। दिनों पर दिन बीतने लगे। अकेला रहकर वह सोचने लगा,—"किस अच्छे ढंग से मेरा जीवन व्यतीत हो रहा है। **जिसको किसी चीज़ से प्रेम नहीं, उसके लिये कुछ भी कष्टकर नहीं है।**"

एक दिन नलने अपनी वाटिकामें एक छोटा सा पक्षी देखा। पक्षी का आधा शरीर उजला था, और आधा काला। वह अपने मनके आनन्द से नाचने लगा। नल, उसके आनन्द से आनन्दित हुआ, उसके नाच से उसे बड़ा आनन्द हुआ; नल ने उस पक्षी के आनन्दोल्लास में किसी प्रकार की रुकावट नहीं डाली। कुछ देर के बाद, पक्षी, उस वाटिका के एक छोर से दूसरी छोर तक घूम घूम कर अपने लिये भोजन

ढूंढ़ने लगा। बीच-बीच में वह रह रह कर नल की ओर निर्भीकता पूर्वक देखने लगा ; और कभी किसी पेड़ की छोटी शाखा पर बैठ कर नाचने लगा; अपनी ठोरों से, जहांतक उससे हुआ, वहां तक वह खुजलाने लगा। कभी दाहनी ओर का पंख फैलाने लगा और कभी बायीं ओर का पंख फैला कर उसकी ओर देखने लगा। अन्त में वह कभी दाहना पांव और कभी बायां पांव ऊपर उठा कर, अपना मस्तक संचालन करने लगा। कुछ ही देर के बाद वह उड़ गया।

दूसरे दिन प्रातः काल नल प्रसन्नतापूर्वक अपने घरमें बैठा था, उसी समय उसने देखा, कि गत पूर्व दिन का पक्षी, फिर आकर उसी दिन की तरह नृत्य और आहार-अन्वेषण करने लगा।

उसी दिनसे हफ्तों वह पक्षी, प्रातः काल वहां आकर अपना नित्य-नैमित्तिक कार्य सम्पन्न करने लगा। अब नल भी वाटिका में आकर पहले उसी पक्षी का अनुसंधान करता था। वाटिका के जिस ओर वह पक्षी रहता था वहाँ से बहुत दूरी पर नल खड़ा रहता था; उसके कार्य में किसी प्रकार की विघ्न-वाधा पहुँचाने की उसकी इच्छा नहीं थी। प्रायः पक्षी उसके निकट तक चला जाता था, जिस पर वह कहता,—"देखो तो ज़रा, इस चिड़िये में हिम्मत कितनी है ?" कई वार तो ऐसा होता था, कि पक्षी की

स्वतन्त्रता में बाधा पड़ने के भय से नल अपने घरके भीतर से बाहर भी नहीं निकलता था।

इसी प्रकार कई सप्ताह बीत गये। एक दिन वह पक्षी नहीं आया। नलने बहुत देर तक उसके लिये व्यर्थ प्रतीक्षा की। उसके दूसरे दिन भी वह पक्षी नहीं आया—उसके बाद वाले दिन भी वह नहीं आया। इससे नल बहुत उदास हो गये, यहाँ तक नौबत पहुँची, कि उस पक्षी को देखे बिना भोजनमें भी उसे कुछ स्वाद नहीं मिलने लगा। आखिर उसको क्या हो गया है? क्या उसको इस बाटिका से अच्छी दूसरी बाटिका मिल गयी है, जिससे वह इस बाटिका को भूल गया है? क्या किसी बाज या सर्पने तो उसे नहीं काट खाया? किसी बहेलिये के जाल में तो वह नहीं फँस गया? इस प्रकार नल के मन में पक्षी के अनिष्ट की चिन्ताएं उदित होने लगीं। उस समय उसके मन में हुआ, कि **"मैं इसको प्यार करने लग गया हूं, इसीसे आज उसके बिना मुझे इतना कष्ट हो रहा है।"**

वह सोचने लगा, कि इसीलिये परम पूज्य बुद्धने कहा है, कि **"जिसके लिये कोई प्यारा नहीं है, उसके लिये कोई दुःखदायी नहीं है।"**

मुझे सावधान रहना चाहिये। इतने पर भी वह उसी पक्षी के लिये प्रतिदिन प्रतीक्षा करने लगा। उसकी वाटिका में जितने पक्षी आते, उन सबों को वह बड़े ध्यान से देखता—शायद उसीका वही प्यारा पक्षी आया हो।

एक दिन नलने देखा, कि एक गौरैया अपने बच्चेको खिला रही है। बच्चा, एक छोटी सी शाखा पर बैठा हुआ है, माता उसके बहुत निकट बैठ कर अपने बच्चे का भोजन करना देख रही है। धीरे धीरे उसके गले से भोजन की सामग्री नीचे उतर रही है, और माता डरे हुए हृदय से उस की ओर देख रही है। बच्चा बार-बार माता के दिये हुए भोज्य-पदार्थ को अपने गले के नीचे उतार रहा है और माता उसके मुँह में अन्न दे रही है।

नल सोचने लगा,—"यह कितने आश्चर्यकी बात है! माता स्वयं भोजन करने से विरत हो कर ही निश्चिन्त नहीं हो जाती; वह बच्चे के मुँह में भी खाद्य सामग्री दे रही है और साथ-ही-साथ जिसमें बच्चा निर्विघ्न भोजन कर सके, इसके लिये सशङ्कित चित्तसे उसकी ओर देख रही है। वह बच्चे से यह नहीं कहती, कि नादान बच्चे! ऐसा न करो। कितने आश्चर्य की बात है! सचमुच यह बड़े आश्चर्य की बात है!! इस दृश्य को देखकर वह बहुत चिन्ताकुल हुआ, उसका अन्तः करण स्नेह-रस से भर गया।

प्रातः काल—यह दृश्य देखनेके समयसे सन्ध्या तक—

वह इसी बातकी चिन्तामें रहा। रातमें भी उसे पूरी नींद नहीं आयी। अन्तमें उसने स्थिर किया, कि मैं विवाह करूंगा। "विवाह करना ही मेरे लिये कल्याण प्रद है। स्वभाव के विरुद्ध कार्य करना अनुचित है। विवाह करने पर भी मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सकता हूँ। स्त्री को स्नेह और सम्मान करना मना नहीं है; हाँ, मैं उससे कोई प्रश्न नहीं करुंगा।"

अपने मनमें इस प्रकार स्थिर कर वह अपने मकान के द्वार पर आ बैठा। वहाँ बैठ कर वह सोचने लगा कि मेरा अभिलषित भावी पत्नी इसी पथसे आयेगी। उस निर्जन पथ से जब कभी कोई वृद्धा, वृद्ध या बालक आते जाते थे, वे उसको अभिवादन कर अपने-अपने गन्तव्य पथ पर चले जाते थे।

कुछ दिनों के अनुभव से उसको मालूम हो गया, कि इस प्रकार द्वार पर बैठ कर पत्नी लाभ करना बड़ा कठिन है। इसीसे वह नगर के भीतर गया। स्वभावसे ही वह लजीला था, किसी भी स्त्रीकी ओर देखने में उसे संकोच मालूम होता था,—किसी से कुछ पूछने की बात तो अलग रहे।

उसने नगर के एक प्रान्तमें निर्जन स्थान पर बनी हुई एक कुटी को देखा। कुटी के बाहर एक विवाह योग्य बालिका बैठी थी। नलने देखा, कि उसके सामने कुछ

थोड़ी चीनी, थोड़ीसी भैंसकी सींग, और हाथी के दाँत का एक टुकड़ा पड़ा हुआ है ।

नल, बालिका और उसके सामने के द्रव्यों को देख कर, उसका मतलब जानने के लिये अत्यन्त उत्कण्ठित रहने पर भी कुछ पूछ न सके । उसको खड़ा देख कर बालिका ने पूछा,—"तुम मुझसे कुछ पूछते नहीं, फिर चुपचाप इस प्रकार मेरे सामने खड़ा होने का क्या कारण है ?"

नलने इसके उत्तरमें कहा, "मैं कुछ प्रश्न नहीं कर सकता ।"

इस पर उस बालिकाने हँस कर नल से पूछा,-"क्यों ?"

"मैं अपने पिता से इसके लिये वादा कर चुका हूँ ।"

यह बात सुन कर बालिका उच्च स्वर से बोल उठी,—"ओ, तो क्या तुम्ही निर्वाक् नल हो ।" इस बार भी बालिका हँस पड़ी जिससे उसके कुन्द सरिस दाँत झलक पड़े ।

उसके इस हास्यका कारण जाननेके लिये नलको बहुत उत्कण्ठा न हुई, पर प्रतिज्ञाबद्ध होने के कारण वह कुछ पूछ न सका । बालिका बोली,—"लोग कहते हैं, कि तुम स्त्रियोंसे कोई सवाल नहीं कर सकते । ऐसी हालत में तुम विवाह, भला कैसे करोगे ? तुम विना पूछे यह किसी स्त्रीसे कैसे पूछ सकते हो कि तू मुझे स्वीकार करेगी या नहीं ?

इस पर नल बहुत क्रोधित हुआ। असल में क्या यही बात है? उसने पहले तो इस विषय में बिलकुल ही कुछ विचार नहीं किया था। वह बहुत घबड़ा गया और बालिका के प्रति निर्निमेष दृष्टि से देखने लगा।

बालिका बोलने लगी,—"इतनी चिन्ता का कोई कारण नहीं है। उचित स्थान पर अनुसन्धान करनेसे मनके योग्य स्त्री मिल ही जायगी। खैर, जो हो, जब तुम किसी स्त्री से कुछ सवाल ही नहीं करोगे तब मैं स्वयं उत्तर दे रही हूँ। मेरे सामने जो तुम इतने पदार्थोंको देख रहे हो, उनका अर्थ यह है, कि—"**मेरे जो स्वामी होंगे उन्हें चीनी की तरह मीठा होना होगा, भैंस की सींग की तरह कठिन, और हाथी जैसा बलवान होना होगा।**"

बालिका की इस बातको सुन कर नलने अपने मन-ही-मन कहा कि यदि सभी स्त्रियां उल्लिखित ढंग के पति चाहें, तो किसी भी स्त्रीको स्वामी नहीं मिलेगा। नहीं! देखता-हूँ, अब निकट में कहीं स्त्री नहीं मिलेगी। यहाँ तो विवाह की इच्छा रखने वाली जितनी बालिकाएं हैं, प्रायः वे सभी मुझे पहचानती हैं और इसमें ज़राभी सन्देह नहीं, कि उनके यहाँ अपने विवाहके लिये मेरे जाने पर वे सब मेरी हँसी

उड़ाने लगेंगी। खैर जाने दो, अब मैं यहां से बहुत दूर जा कर स्त्री की खोज करूंगा।

अत्यन्त चिन्तित मन से नल गृह परित्याग कर परिभ्रमण-करने लगा। उसने निश्चय किया, कि जब तक स्त्री नहीं मिलेगी, तब तक मैं इसी प्रकार भ्रमण करता रहूंगा।

भ्रमण करते-करते एक दिन उसने राजमार्ग से कुछ दूरी पर एक सुन्दर तालाव देखा। तालाव के चारों ओर फल-भारसे अवनत वृक्षों की पंक्तियां सुशोभित हो रही थीं। तालाव के निकट जाकर उसने ज्यों ही किसी पेड़ की छाया में सोने की इच्छा की उसी समय उसे किसीका आर्त्तनाद सुन पड़ा, शब्द सुनने के साथ-ही-साथ उसने देखा, कि एक नव-वयस्का कुमारी वृक्ष से गिर पड़ी है। तुरत नल उसकी सहायता के लिये दौड़ पड़ा, वहां जाने पर उसे मालूम हुआ, कि कुमारी बालिकाका पांव टूट गया है। वह बड़े ज़ोरों से चिल्लाने लगी। परन्तु तथापि पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार नलने उससे कोई सवाल नहीं किया। वेदना-कातर बालिकाके निकट वह बड़ाही आश्चर्य-जनक मालूम हुआ। इसी से उससे बिना पूछे वह नहीं रह सकी; बोली,—"तुम कुछ बोलते क्यों नहीं हो? क्या तुम्हें मालूम है, कि मैं इस पेड़ पर से कैसे गिर गयी?"

"नहीं।"

"तो फिर पूछते क्यों नहीं हो?"

" मैं प्रतिज्ञामें बँधा हुआ हूं—इसीसे कोई सवाल नहीं कर सकता । "

" यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है। अगर तुम कहीं रास्ता भूल जाओगे, तो कैसे किसी से पूछोगे ? "

"मैं केवल किसी स्त्री से कुछ सवाल नहीं कर सकता" ।

"ओ ! तो यही कहो ! खैर, जब तुम स्वयं नहीं पूछोगे, तो मैं ही कहती हूं । अच्छा, तुम अपना नाम तो बताओ" ।

"लोग मुझे नल कह कर पुकारते हैं " ।

"और मेरा नाम है कथा, कथा मेरा असल नाम नहीं है, यह पुकार का नाम है । अफवाह यह है, कि दिन के समय यदि कोई कुमारी बालिका किसी वृक्ष पर आरोहण कर उस वृक्ष के सभी फलों को खा सकेगी. अथच उसको कोई पुरुष नहीं देख सकेगा,—देख रहे हो, तालाब में कितने लोग स्नान कर रहे हैं—तो फल खाने के बाद ही, जिस पुरुष को वह देख सकेगी उसीके साथ उसका विवाह होगा। यदि कोई आदमी, उसको बीच में ही देख ले, तो उससे कोई फल नहीं होगा। दुःख की बात यह है, कि आखिरी फल मैंने तोड़ लिया था, पेटमें अब जगह नहीं थी—ठीक उसी समय तुम्हारे ऊपर नज़र पड़ी । तुम्हे देखतेही भयभीत हो कर मैं पेड़ पर से गिर पड़ी " ।

"यह तो बड़े भारी दुःख की बात है ! परन्तु यह कितने

बड़े आश्चर्य की बात है! जब तक तुम वृक्ष पर थी, तब तक तो मैंने तुम्हें देखा नहीं था—जब तुम ज़मीन पर गिर पड़ी, तब मैंने तुम को देखा है"।

"ठीक कहते हो! भूलते तो नहीं हो?"

"नहीं, ज़रा भी नहीं भूलता—मैं बिल्कुल ठीक कह रहा हूं"।

"अच्छा, नल! क्या तुम यह बता सकते हो, कि गिरने के समय मेरा मस्तक नीचे की ओर था या नहीं?"

"मुझे जहां तक स्मरण है, मस्तक नीचे की ओर ही था"।

"अच्छा, स्मरण कर बताओ तो कि गिरने के समय, मैं निर्बोध की तरह गिरी थी?"

"मुझे इसका स्मरण नहीं। तुम अकस्मात् वृक्ष के ऊपर से गिर पड़ी थी"।

"अच्छा, इसके पहले और किसी बालिका को तुमने पेड़ परसे गिरते हुए देखा था?"

"नहीं, इस जीवन में तो कभी नहीं देखा था"।

"अच्छा, जब तुमने मुझे देखा था, उसके पहले ही मैं पेड़ परसे गिर चुकी थी, तो अबसे भी सब ठीक हो सकता है। पर, मैं भी कैसी गंवारी हूं! अगर तुमने मुझको पेड़ के ऊपर नहीं देखा तो—", इतना कहने के बाद उसे उसी किम्बदन्ती की बात याद हो आयी।

नल ने कहा,—"ठीक है, यही तो"।

"मैं घर जाऊंगी" कहकर कथा ज्योंही उठने लगी, त्यों ही उसके पावों में दर्द मालूम हुआ। वह बोली,—"हाय! अब मैं कैसे मकान जाऊंगी?"

इसके जवाब में नल ने कहा,—"मैं तुम्हे अपनी गोद में उठा कर पहुंचा आऊंगा"।

इस पर कथा ने हंस कर कहा,—"मेरा मकान यहां से बहुत दूरी पर है। हां, एक काम करो—सड़क तक मुझे पहुंचा दो, वहां से मैं किसी गाड़ी पर सवार होकर चली जाऊंगी"।

नलने उसे गोदमें उठा लिया, वह उसकी गोद में लुढ़क पड़ी।

"मेरी गर्दन पकड़ लो—नहीं तो मैं तुम्हारा भार सहन नहीं कर सकूंगा"—नलकी इस बातको सुन कर कथा ने वैसाही किया—और न मालूम क्या सोच कर वह बोल उठी,—"मैं तुम्हें प्यार करती हूं"। इस पर नल ने कहा,—"अगर यह सच्ची बात है, कथा! तो तुम मुझसे विवाह कर लो"।

पर कथा ने अपनी बात का सिलसिला बदल कर कहा,—"क्या तुम यह जानते हो, कि मुझसे कितने लोग विवाह करना चाहते हैं?"

नल ने कुछ उदासी के साथ कहा,—"मैं उसी किम्वदन्ती की बात ही सोच रहा था"।

उसने भी तुरत ही इसके जवाब में कहा,—"वहतो लड़कि-

यों का खिलवाड़ मात्र है। गांवकी सभी बालिकाएं ऐसा करती हैं। मुझे पेड़ से गिरते हुए देखा है, इससे यह न समझो कि सब ठीक हो गया है"।

"जो हो मैं ही तुम्हारा स्वामी होऊंगा!"

"हां! वशर्तेकि मैं ग्रहण करूं!"

"पर तुमने तो अभी कहा कि मैं तुम्हे प्यार करती हूं"।

"खैर! मुझसे तुम कोई सवाल ही नहीं करोगे, तो मैं कैसे तुमसे विवाह करूंगी!"

"लेकिन, कथा! मैं न तो किसी भी स्त्रीसे कुछ सवाल करूंगा और न कर सकता हूं"।

"अच्छा, यदि तुम्हारा विवाह हो जायगा, तो क्या तुम यह भी अपनी स्त्री से नहीं पूछ सकोगे, कि तुम मुझे प्यार करती हो या नहीं?"

"नहीं, कथा! मैं यह भी नहीं पूछ सकूंगा"।

कथा ने इस समय नल को और भी जकड़ कर पकड़ लिया और पूछा,—"मालूम होता है कि अब तुम थक गये!"

इसके उत्तर में नल ने बड़े उल्लास के साथ कहा,—"जरा भी नहीं।"

नल की इस बात पर कथा सन्तुष्ट हो गयी, वह बोली—अच्छा, यदि तुम मुझसे कुछ भी नहीं पूछोगे, तो मैं तुमसे दूसरा काम करा लूंगी। यदि यहां से तुम, मुझे मेरे गांव तक ले चल सको, तो मुझ से कुछ न पूछोगे तोभी मैं तुम-

से विवाह करूंगी और वहां पहुंचने पर बड़े प्रेम के साथ तुम्हारा मुख चूमूंगी। लेकिन राह में, अगर तुम मुझे एक बार भी उतारोगे, तो तुम्हारे साथ मेरा विवाह नहीं होगा। हां, अगर मैं तुम्हें भारी मालूम होऊं, तो उस हालत में मैं तब तुम से विवाह करूंगा, जब तुम मुझ से पूछोगे, कि तुम मुझ से विवाह करोगी या नहीं—बस, इतने ही में सब बखेड़ा खतम है।"

इतनी देरमें बात-चीत करते हुए दोनों राजमार्ग के निकट पहुंच गये। नल, बलवान युवक था। वह सोचने लगा, कि मैं अनायास कथा को अपनी गोदमें लेकर निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच सकता हूं। यदि यह साधारण-सा भी काम नहीं कर सकूंगा, तो ज़िन्दगी भर दुनियां में इधर-उधर भटकते रहने पर भी मैं स्त्री नहीं पा सकूंगा।" इसी से उसने जवाब में कहा,—"अच्छी बात है, मैं तुम्हें गांव तक पहुंचा आऊंगा।"

"नह , नहीं, उतनी दूर ले जाने की ज़रूरत नहीं है, उस बुद्ध-मूर्ति तक ही पहुंचा देने पर तुम्हारा कर्त्तव्य पूरा हो जायगा। तुम चलो, मैं वह मूर्ति तुम्हें दिखा दूंगी। गांव में बुद्ध भगवानकी तो एक ही मूर्ति ही है।"

"अच्छा! लेकिन मेरी भी कुछ शर्तें हैं।"

"कौन कौन?"

"पहली तो यह, कि यहां पर तुम्हें एक बार उतार कर रखूगा।"

"अच्छा।"

नल ने धीरे-धीरे वहीं कथा को अपनी गोद् से उतार दिया।

दूसरी शर्त यह है, कि जिसमें मुझे ज्यादा भार न मालूम हो, इसलिये तुम्हें, अच्छी तरह से मुझे पकड़े हुए रहना होगा।"

"अच्छा नल! यह भी मुझे मंजूर है।"

"तीसरी शर्त यह है, कि रास्ते में तुम मुझ से एक भी बात नहीं बोल सकोगी। तुमने जहां चूं भी किया, तो मैं उसी समय वहीं तुम्हें जमीन पर उतार दूंगा।"

"अच्छा, मैं इसके लिये भी तैयार हूं।"

नल ने समझा, कि मेरी ये शर्तें बड़े काम की हैं। पर उससे एक बड़ी भारी भूल हो गयी—वह यह, कि उसने यह नहीं पूछा, कि यहां से बुद्ध की मूर्ति कितनी दूर है।

नलने भली भांति विश्राम कर लेनेके बाद, कथा को अपनी गोद में उठाया। इस बार कथा ने उसको खूब चिपट कर पकड़ लिया। नल के वक्षस्थल के साथ, उस का वक्षस्थल मिल गया। अब उसने पूछा,—"इस बार तो ठीक है न! अभी तुम ने चलना शुरू नहीं किया है, इसी से मैंने तुम से यह सवाल किया।"

"अच्छी बात है ! अब मैं चलता हूं ।"

नल, इतना कहनेके बाद, कथा को गोद में लेकर आगे बढ़ा । उसने अपने मनही-मन सोचा, कि जन्म भर मुझे ऐसा ही भार वहन करना पड़े तो भी मैं श्रान्त नहीं हो सकता । नलके वक्षस्थल के साथ-साथ कथा का भी वक्षस्थल स्पन्दित होने लगा । कथाके प्रश्वास का अनु-भव नल के कपोलों को होने लगा । इसी समय उसने समझा, कि जबसे जन्म हुआ है, तबसे लेकर आज तक इतना सुखी मैं कभी नहीं हुआ था । निर्वाक् होकर प्रसन्न चित्त से वह आगे बढ़ने लगा । अब उसके मनमें इस भाव का उदय होने लगा, कि बुद्धके इस उपदेश का—"जिसके लिये कुछ भी प्रिय नहीं, उसके लिये कुछ भी कष्टकर नहीं है" कुछ भी मूल्य नहीं है । भगवान ने व्यर्थ ही ऐसा उपदेश दिया है । ऐसा भार वहन करने में कितना सुख है ! क्या इससे कुछ क्लेश हो सकता है । पर मालूम होता है, कि नल की प्रतिज्ञा टूटने में अब देर नहीं है ।

दो पहर का समय हो गया—बड़ी तीखी धूप पड़ रही है । थोड़ी ही दूर जाते-जाते नल को प्यास मालूम हुई । वह क्लान्त हो गया, तथापि वह दृढ़ता के साथ आगे पांव बढ़ाने लगा । कथा निर्वाक् होकर उसके वक्षस्थल से लगी रही । धीरे धीरे नल की गति मन्द पड़ने लगी ।

अब वह सोचने लगा, कि यदि मेरी प्रतिज्ञा टूट जाय, तो मैं कथा से कुछ पूछ कर उसके साथ विवाह कर लूंगा।

नल मनहीं मन कहने लगा,—"क्या कथा कोई बात नहीं कहेगी? क्या निकटमें बैठे हुए किसी पक्षी की ओर यह मेरा ध्यान आकर्षित नहीं करेगी? रास्ते में पड़े हुए पत्थर को देख, ठोकर खाने से मुझे बचाने के लिये क्या वह मुझे सावधान नहीं करेगी? क्या मेरे क्लेश से व्यथित होकर वह किसी छायामय सुशीतल स्थान में जाने के लिये नहीं कहेगी?" परन्तु कथा ने कुछ भी नहीं किया—वह कुछ भी नहीं बोली। वह पत्थर की तरह निर्वाक निस्पन्द बनी रही। उधर नल बहुत क्लान्त हो गया। पहले तो उसके मस्तक से, पर, पीछे सारे शरीर से तर-तर पसीना चूने लगा। उसके गोदका बोझा—अब तक जिस बोझा को वह स्वर्गीय सुख-प्रद समझ रहा था—अब उसके लिये सुख-प्रद नहीं रहा। रह-रह कर वह कथा को अपनी छाती से जरा जरा दूर रखने की व्यर्थ कोशिश करने लगा। नल मनही मन कहने लगा "बड़ी गजब की औरत है?"

नल के इस मानसिक भाव को समझ कर कथा प्रसन्न हो रही थी। वह भी मनही मन कह रही थी,—यह भी विलक्षण आदमी है। थकावटसे यह मरने-मरने हो रहा है, इतने परभी अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ता। मौका आवेगा, तो मैं इनकी सब दृढ़ता हवा कर दूंगी। परन्तु आज यदि मैं अपनी

पराजय स्वीकार कर लेती हूं, तो मुझे वैवाहिक जीवन में प्रति दिन अपनी पराजय स्वीकार करनी होगा। यदि बुद्ध की मूर्ति के निकट तक यह ले जा सकेगा तो अच्छा ही है–उस में ता मेरी कोई हानि है नहीं! चुपचाप वह नल की छाती से लगी रही, नल की क्रान्ति का वह अनुभव करने लगी; नल को श्रान्ति जनित निश्वाससे उसे कुछ भी अशान्ति नहीं मालूम हुई।

पर इस ओर नल अब क्रमशः असमर्थ होता जाता था; अब उसकी गति बहुत मन्द पड़ गयी; उसका निश्वास दीर्घ निश्वासमें परिणत हो गया। कथाने नलकी ओर आंख उठाकर देखा, कि नलका चेहरा पीला पड़ गया है। दोनों आंखें बाहर निकली जान पड़ती हैं।

नलभी यह बात समझ रहाथा कि कथा मेरे हृदय के इस भाव को समझ रही है। जो हो, अब अवश्य कथा मुझे ठहर जानेको कहेगी। वास्तवमें कथा, भयविह्वल-चित्तसे नलके मुखको ओर देख रही थी। किन्तु तथापि उसने सोचा, कि जब नल अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ रहा है, तो मैंही क्यों अपनी प्रतिज्ञा तोड़ने जाऊं?

नलने सोचा कि यह कितना कठोर व्यवहार है! अब उससे आगे चलते नहीं बनता था। बुद्ध की मूर्ति के पावों तले जब उसने कथा को उतार दिया, तब उसके पाँव काँप

रहे थे । उस समय उसे मालूम हुआ, कि अब एक पाँवभी आगे मैं नहीं चल सकता ।

कथाने बड़े आग्रह के साथ अपना हाथ बढ़ा दिया, साथ-ही साथ वह चुम्बनकोभी प्रत्याशामें थी । उस देशकी चालही यह है । नलने लम्बी साँस लेते हुए कहा,—" जरा ठहरो कथा !"

अपने हाथों से वह पसीना पोंछने लगा, पर वह पसीनेका प्रवाह हाथसे दूर नहीं हुआ ; इसीसे वह अपनी चादर का इस्तेमाल करने को विवश हुआ । नलने पसीना पोंछनेमें बहुत देर लगादी—बहुत धीरे-धीरे वह यह कार्य करने लगा । साथही-साथ उसे ऐसा मालूम होने लगा, मानो बुद्धकी मूर्ति उसकी ओर देख देखकर हँस रही है, कथा उसकी कार्यावली देख रही थी, पर कुछ बोलती नहीं थी ।

जब नलका पसीना पोंछना समाप्त हो गया, तब धीरे धीरे उसने कथा से कहा,—"मुझे क्षमा करो । मुझे मालूम होता है, कि जब मैंने तुमको देखा था, तब तुम्हारा पांव पेड़ में लगा हुआ था । इसलिये पुनर्वार तुम्हे पेड़ पर चढ़ कर फल खाना होगा" । इतना ही कह कर वह बड़ी तेजी से, वह स्थान छोड़ कर अपने घर की ओर चल पड़ा ।

नल घर पहुंच गया, वह फिर अपने घरके पासवाली बहुत बड़ी उपत्यकाकी ओर बड़े गौर से देखने लगा । उपत्यका से कुछ दूरी पर जो पहाड़ थे, वे, उसे समूह के

बोच जहाज की तरह मालूम होने लगे। वह प्रति दिन सूर्य का उदय और अस्ताचल की ओर जाना देखने लगा। अकेला निर्विकार चित्तसे उसको उस सौन्दर्य का उपभोग करते देख, लोगों ने उसे साधु कहना आरम्भ किया और यदि कोई दुःखी मनुष्य उसके निकट आकर पूछता, कि हे महात्मन्! आपका चित्त किस प्रकार निर्विकार हुआ? तो वह जवाब देता था, कि जिसके लिये कुछ भी प्रिय नहीं है, उसके लिये कुछ भी कष्टकर नहीं है। और यदि उससे कोई पुरुष उपर्युक्त प्रश्न करता, तो वह कहता,—कदापि किसी स्त्री से कोई प्रश्न नहीं करना।

इस प्रकार विज्ञता और साधुताके लिये दिनों दिन नल की प्रसिद्धि बढ़ने लगी; और यदि किसीका शोक और ताप-से जीवन भार हो जाय, तो वह नल के इन दोनों उपदेशोंके अनुसार चले; क्योंकि उसके दोनों उपदेश अमूल्य हैं।

आत्मोत्सर्ग

(१)

कोलम्बो शहरके बहुत निकटवर्ती एक गांव में बहुत से धीवर रहते थे। उस गांव में निवास करने वाले लोगों के रहने के लिये ज्यादेतर झोंपड़े ही थे। इसीसे इस गांव के रेवत का मकान कोई बहुत बड़ा महल नहीं रहने पर भी लोगों का ध्यान उस मकान की ओर खिंच ही जाता था। मकान की चारो ओर सुन्दर वराण्डा था और उन्मुक्त-द्वार-पथ से गृह शय्या की शोभा, धीवर और धीवर-पत्नी के हृदयों में विस्मय का संचार करती थी।

रेवत की स्त्री के मरे हुए बहुत दिन हो गये थे—वह अपने चिह्नस्वरूप एक बालक और एक बालिका यहां छोड़ गयी थी। रेवत ने अपनी स्त्रीके मर जाने पर दूसरा विवाह नहीं किया। उसकी स्त्री, यद्यपि वैसी सुन्दरी नहीं थी, पर वह स्वामी का मनोरञ्जन करने में समर्थ थी; इसीलिये उस स्त्री की असमय मृत्युकी वेदना वह भूल नहीं सका। रेवत की माता का कहना था, कि संसारमें शान्तिही दैनिक आहार है। वाह्य सौन्दर्य्य सामयिक मसाले हैं। विवाह जन्मभर के लिये किया जाता

है; तरह तरह की तरकारियां न होने पर भी काम चल सकता है, पर भात के बिना काम नहीं चलता । संसार में शान्ति रहने पर सब लोग सुखसे रहते हैं--जहां सुख है, वहीं सौन्दर्य्य है ।"

माता के इस उपदेश-वाक्य को रेवत अमूल्य रत्न समझता था । उसने अपना वैवाहिक जीवन कैसे सुखके साथ व्यतीत किया था ! उसकी स्त्री बोलने में संयत थी, काम में लज्जाशील थी, तथापि स्वामी को सुखी या उसके दुःख दूर करनेके लिये वह ज़रा भी कृपणता नहीं करती थी । यद्यपि स्त्री को अकाल मृत्यु से गंभीर कष्ट हुआ था ; किन्तु वह भी अपनी स्त्री के प्रति बहुत दया भाव रखता था, बराबर अपने मन बहलाने की कोशिश में रहता था, इसीसे धीरे धीरे वह क्षत स्थान भरगया । क्योंकि मृत्युके पहले यदि कोई मृतकके प्रति स्नेह और प्रेम नहीं प्रदर्शित करता, तोभी आकस्मिक मृत्यु के बाद उसके लिये मनोदुःख होता है ।

यदि रेवत चाहता तो दूसरा विवाह कर सकता था ; पर उसके पुनर्विवाह करने का उसे कोई कारण नहीं मिलता था । उसके हित-मित्र उससे दूसरा विवाह करने का अनुरोध करते थे । ऐसी अवस्था में स्त्रीके मर जाने पर विवाह कर लेना स्वाभाविक है, यह सब ऊंच-नीच उसको समझाते थे;

पर रेवत सोचता था, कि मेरे हित-मित्र दूसरा विवाह करनेके लिये मुझसे इतना अनुरोध क्यों करते हैं? इस उमर में स्त्री के मर जाने पर विवाह करना उचित कैसे है? अवस्था तो मानो एक प्रकार का पर्दा है जिनसे मानो सब कुछ छिपा हुआ है। क्या स्वाभाविक होने के कारण ही हम लोग सभी कामों को कर सकते हैं? जैसे हाथी, मार्ग में पड़े हुए बांस के पेड़ को जड़ से उखाड़ कर आगे बढ़ता है, वैसे ही मनुष्य के लिये भी तो दूसरे को मार कर अपना मार्ग निष्कण्टक बना लेना उचित हो सकता है। हमारा कर्तव्य क्या है--जो स्वाभाविक है, वही सभी जगह उचित नहीं हो सकता। जो उत्तम है, वह सर्वत्र उत्तमही हो, यह कोई बात नही है—बुद्धने जितने उपदेश दिये हैं, वेही सब उत्तम हैं। भावुकों के लिये केवल एक ही वस्तु उत्तम है और वह है—**त्याग**।

हमलोग विवाह करने के लिये जो आतुर होते हैं, उसका कारण इन्द्रिय-परतन्त्रता ही है। विवाह के बाद इन्द्रियों की परवशता दूर हो जाती है और परिवार की वृद्धि से सम्मान की वृद्धि होती है; यह विचार क्या प्रत्येक मनुष्य के लिये गौरव का विषय हो सकता है? परिवार-वृद्धि और साथही-साथ सम्मान-वृद्धि के लिये क्या कोई विवाह करता है? **सब प्रकारसे इन्द्रिय-परतन्त्रता का दमन करना उचित है।**

इस तरह कई साल बीत गये, पर उसने विवाह नहीं किया । वह अपने पुत्र और कन्याके प्रति अत्यन्त अधिक अनुरक्त था । जिसमें उनका मंगल हो, इसीके लिये वह रात-दिन प्रयत्नशील रहता था । उसने अपने पुत्रका नाम शीलानन्द और बालिका का नाम अम्बा रखा था । बालिका का नाम अम्बा रखने का कारण यह था —

रेवत की स्त्री आम बहुत ज्यादा खाती थी । आमके दिनों में दो पहरके समय जब वह सोयी हुई थी, उसी समय फुल-बाड़ी के पेड़से एक बहुत सुन्दर पका हुआ आम गिरा । दासी वह आम उठा कर उसके पास गयी, दासीके पांव की आहट पाकर रेवत की स्त्री जाग पड़ी और दासीके हाथसे आम ले कर खा गयी । रेवत की स्त्री गर्भिणी थी, आम खानेके थोड़ीही देर बाद, उसके एक कन्याहुई । इसीसे उस कन्या का नाम रखा गया अम्बा । अम्बा के जन्म के दो वर्ष बाद शीलानन्द का जन्म हुआ ।

बालक, अपने बाल्य कालसेही पिता जैसा चिन्ताशील था, और बालिका, मायाके समान धीर और शान्त-प्रकृति की थी । रेवत ने बालक को कोलम्बो के प्रधान बौद्ध विद्यालय में विद्या पढ़नेके लिये भेजा । वह अंगरेजी स्कूल का पक्षपाती नहीं था । अंगरेजी स्कूलोंमें रास्ता बनाने, रेलवेकी शिक्षा, अन्यान्य आश्चर्य-जनक कामोंकी शिक्षा जरूर दी जाती है ; परन्तु उससे लोगों के अभाव बढ़ते ही जाते

हैं—कम नहीं होते। उसकी ऐसी इच्छा रहने पर भी पुत्र, उसकी इस इच्छा का विरोधी था। अवस्था वृद्धिके साथ-साथ शीलानन्द अंगरेजी शिक्षा का अधिक पक्षपाती हो गया। बौद्ध धर्म में जो उसको ध्यानकी शिक्षा दी जाती थी, वह उसे अच्छी नहीं मालूम होती थी। उसका झुकाव विज्ञान की ओर हुआ—उसकी श्रद्धाके पात्र वैज्ञानिक थे।

कोलम्बो के बौद्ध स्कूल की शिक्षा समाप्त कर बालक ने कलकत्ते के अंगरेजी स्कूलमें पढ़ने जाने के लिये अपने पितासे अनुमति मांगी। पिताको पुत्रका वह प्रस्ताव अत्यन्त अनुचित मालूम हुआ। रेवत चाहता था, कि मेरा लड़का बौद्ध धर्म में पूरी अभिज्ञता प्राप्त करे। पर, पुत्र के प्रस्ताव का विरोध नहीं कर सका। प्रस्ताव वास्तव में असंगत नहीं था,—रेवत बड़ा समृद्धिशाली मनुष्य था, इसलिये पुत्र को कलकत्ते में रख कर पढ़ाना उसके लिये कुछ कठिन नहीं था। विशेषतः मृत स्त्री की बात याद कर उसने पुत्रको कलकत्ते पढ़ने के लिये भेज दिया।

शीलानन्द कलकत्ते में चार वरष रहा। चार वर्ष के बाद शीलानन्द ने अपने पिता के पास लिखा, कि मेरा विद्याभ्यास तो समाप्त होगया, लेकिन मैं इसाई हो गया हूं। घर लौटनेके पहले उसने इस सम्बन्ध में अपने पिता की राय पूछी थी।

अपनेको बौद्ध कह कर अपना परिचय देता है, कोई अपनेको इसाई कहता है और कोई कुछ कहता है, पर, यह सब व्यर्थ है, इससे कुछ भो हानि लाभ नहीं है। देखना तो यह चाहिये कि किस उपायसे मनुष्य तृप्त रहता है और शान्ति का आनन्द लूट सकता है। इससे बढ़ कर अच्छी चीज़ और कुछ नहीं है। तुम यदि अपने मनमें यह समझते हो कि ईसाइयों के देवता तथागत को अपेक्षा अधिक शान्ति दे सकते हैं तो बहुतही अच्छा है। मैं इसाइयों के देवता को नहीं जानता —उनको जाननेकी कुछ जरूरत भी नहीं देखता—क्योंकि अपने बुद्ध धर्म में जो मैं चाहता हूं, वह पाता हूं। यह मैं जानता हूं कि सभी धर्म अच्छा होने की शिक्षा देते हैं और इस सम्बन्धमें सभी धर्मों को एक राय है। पर यह कह देना आवश्यक है, कि मेरे धर्म में अच्छा होने का मार्ग जैसा दिखाया गया है अन्य किसी धर्म में वह बात नहीं है। इसीसे मैं तुम्हारा पत्र पाकर दुःखी हुआ हूं और तुम्हारे लिये चिन्तित हुआ हूं; पर तुम्हारे प्रति मेरा स्नेह जैसा पहले था, वैसा ही अब भी है और बराबर रहेगा भी।"

पुत्र ने पिता के इस पत्र को पढ़ा। हर्ष और विषाद दोनों ने एकसाथ उसके चित्त पर अपना असर पहुंचाया। जब कोई मनुष्य दूसरा धर्म ग्रहण करता है, तब वह अपने गृहीत नवधर्म के लिये युद्ध करने और आवश्यक होने पर प्राण विसर्जन करने को भी प्रस्तुत रहता है। परन्तु पिता की उदासीनता से शीलानन्द को कुछ भी करनेकी आवश्यकता नहीं हुई। पिताने उसके पथ को अत्यन्त सरल बना दिया।

विद्याभ्यास पूरा हो जाने पर वह मकान लौट गया। कलकत्ते में जो उसके शिक्षक थे उन्हों ने उसके देशमें रहने वाले इसाइयों के नाम एक सिफ़ारिशी चिट्ठी दे दी। जब शीलानन्द कलकत्ते में रहता था, तब उसके नवीन धर्मावलम्बी बन्धु-बान्धवों ने उसके हृदय में यह धारणा दृढ़ कर दी थी, कि भारतवर्ष के सर्वसाधारण की उन्नति करना परमावश्यक है और इसाई धर्म के द्वारा ही वह काम सहज में हो सकता है। शीलानन्द का चित्त सहज में ही इन सब बातों में आ गया था।

कलकत्ते से लौट कर घर जाने पर शीलानन्द एक साल तक अपने पितृ-गृह में रहे— इतने दिनों तक स्वदेशवासियों की उन्नति करना और उन्हें इसाई धर्म में दीक्षित करना ही उनका एक मात्र कर्तव्य रहा। उनका चित्त उक्त धारणा के वशवर्त्ती हो गया था, जिससे बीच बीच में पिता पुत्र में वाद-विवाद भी होता था। इसका फल यह हुआ, कि आपस में धीरे धीरे मनोमालिन्य का संचार होने लगा; रैवत

अपने पुत्र के कार्य का समर्थन नहीं करता था। धर्म अवश्य उसके लिये सर्वप्रधान पदार्थ था; परन्तु प्रत्यक्ष रूप से धर्म को "प्रदर्शनी" बनाने वह नहीं चाहता था। जो धर्म दूसरे धर्म का सम्मान करता है, और दूसरे के धर्म पर आघात नहीं करता, उसी धर्म को वह सबसे श्रेष्ठ धर्म समझता था। यही कारण है, कि इसाई मिसनरियों का धर्म, उसको एक असंस्कृत सम्मार्जनी की तरह मालूम होता था—इसीलिये वह इस धर्म को घृणा की दृष्टि से देखता था, और उस धर्म के पक्ष में उसका पुत्र जो काम करता था, उस काम को बहुत तुच्छ समझता था। पर वह अच्छी तरह से यह समझता था, कि पुत्र के कामों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, इसके लिये वही एकमात्र उत्तरदायी है, दूसरा कोई नहीं।

एक दिन सन्ध्या के समय पिता-पुत्र अपने गृह के सामने सुखपूर्वक बैठे हुए थे। उस देश की प्रचलित प्रथा के अनुसार पिता, एक ही वस्त्र पहने हुए था—पांवमें एक स्लीपर था इसके सिवा उसका सारा शरीर अनावृत था, पुत्र विलायती कपड़े के मोताविक पांव से मस्तक तक सुसज्जित था। पिता, चिन्ताकुल चित्त से ताम्बूल भक्षण कर रहे थे। पुत्र, लण्डन से भेजा हुआ और वहां की मिसनरी रेवरेण्ड स्टीवेन्सन का दिया हुआ एक समाचार पत्र पढ़ रहा था।

शीलानन्द ने उस पत्र का अथ से लेकर इति पर्यन्त पढ़ डाला। वैज्ञानिक, राजनैतिक, शिल्प सम्बन्धी विषयों को

पढ़ कर वह वहीं रह गया ; बल्कि एक २ कर सभी विज्ञापनों को भी पढ़ डाला। उन सब विज्ञापनों को पढ़ कर उसके मन में कितने ही प्रकार के भावों का संचार हो गया। साथ-ही साथ उसके मनमें कई प्रकारकी चिन्ताओं की तरंगें लहरने लगीं। वह सोचने लगा, कि न मालूम, विलायत कैसा है? शिक्षामें उसकी कितनी उन्नति हुई है? मेरी जातिवाले सिंहलद्वीप वासी क्या कभी अंङ्गरेजों की बराबरी कर सकेंगे? उसके मनमें उसी समय से अपनी जाति में शिक्षा का प्रचार कर उस की उन्नति करने का विचार हुआ। उसने समझलिया, कि मुझे अभी से—आजही से—इसके लिये कुछ-न-कुछ करना होगा। शीलानन्द की दृष्टि पान खाते हुए पिता के ऊपर पड़ी। सूर्यनाराण अस्ताचल को जा रहे थे, सान्ध्य आकाश, रंग विरंग के मेघों से सुशोभित हो रहा था। सान्ध्य समीरण शरीरकी क्लान्ति को दूर कर शरीर में नयी स्फूर्ति पैदा कर रहा था। चारों ओर से खिले हुए कुसुमों की सुगन्धि वायुमण्डल को सुरभित करती थी ; राज-मार्ग पर सुन्दर बालक बालिकाओं का दल, खेल में व्यस्त था, स्त्रियां हास्य रस की धारा से पृथ्वी को प्लावित करती हुई जल भरने के लिये कूप पर जा रही थीं ; किन्तु शीलानन्द को मालूम हुआ, कि पिता के हृदय पर इन सब सुन्दर दृश्यों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ रहा है।

बहुत देरतक शीलानन्द की दृष्टि दूरवर्त्ती किसी वस्तु पर

अँटकी रही; अन्त में उसकी दृष्टि को क्लान्ति मालूम होने लगी; उसने फिर समाचार पत्र पर दृष्टि डाली। इस बार निम्न लिखित विज्ञापन पर उसकी दृष्टि पड़ी—"मैडम बाल खरीदने के लिये प्रस्तुत है"। इस विज्ञापन को पढ़ कर शीलानन्द के मनमें हुआ, कि श्वेतदेश के रहने वाली स्त्रियोंमें कैसी अपूर्व शक्ति है।

वह फिर पढ़ने लगा,—"एक उच्च अन्तःकरण की सुशिक्षिता युवती, वैसेही उच्च अन्तःकरण के सुशिक्षित युवक के साथ विवाह करने के लिये पत्र व्यवहार करने को इच्छुक है।" इस विज्ञापन को वह दो तीन बार पढ़ कर चिन्ता करने लगा:—"पृथ्वी भी कैसी अपूर्व है! ऐसी स्त्री का स्वामी हो कर उसके सहयोग में काम करना और दूसरे का दुःख दूर करना कितना अच्छा काम है!" वह फिर सोचने लगा। उसने अकस्मात् अपने पिता का सम्बोधन कर कहा,—"कलकत्ते से मकान लौटने के समय ताञ्जोर स्टेशन पर मैंने एक किसान और उसकी पत्नी को देखा था। किसान के हाथमें केवल एक छड़ी और उसकी पत्नी की गोद में एक लड़का और उसके सिर पर एक बोझा था; यही दोनों का सर्वस्व था। वह स्त्री उस बोझ के भार से इस प्रकार दबी जाती थी, कि उससे चला नहीं जाता था; तथापि वह अपनी गोद के लड़के का प्यार करने से बाज नहीं आती थी। बड़े कष्ट से वह स्टेशन पर पहुंची। पुरूष का इस ओर जराभी ध्यान नहीं था—मालूम

होता था, मानो, उस स्त्री के साथ उसका कुछ सम्बन्ध नहीं था। इस दृश्यको देखकर मुझसे नहीं रहा गया। मैं ने उस आदमी के पास जा कर कहा 'यह स्त्री बहुत थक गयी है।" इसपर उसने कुछ जवाब नहीं दिया; मैं फिर बोला, "अपनी स्त्री के ऊपर, इतना बड़ा बोझा लादना तुम्हें उचित नहीं है"। इस पर उसने लापरवाही के साथ कहा,—"यह इसी का काम है"। मुझसे उसका यह जवाब सहन नहीं हुआ। मैंने ललकार कहा,—" तुम मनुष्य हो या पशु ? क्या अपनी स्त्री के साथ ऐसा ही व्यवहार करना चाहिये ?"

वृद्ध रैवत, धीरभाव से अबतक शीलानन्द की बात सुन रहा था। वह समाचार-पत्र पढ़ना पसन्द नहीं करता था, इस लिये जिस समय शीलानन्द समाचार पत्र पढ़ रहा था, उसी समय वह मनही मन चिढ़ रहा था। अब उसने अपने पुत्र से पूछा," क्या तुम यह बात अच्छी तरह से जानते हो कि वह स्त्री, उस किसान की पत्नी थी ?"

" यह तो बडे आश्चर्य की बात है! क्या वह उसकी दूसरी कोई हो सकती है ? उसकी पत्नी हो या और कोई हो इससे क्या ?"

" ठीक, पर तुम्हारे कहने से कुछ फल हुआ ?"

" फल? मैं आपकी बात नहीं समझता। मैं तो अपना कर्त्तव्य पालन कर दिया।"

" क्या तुमने वास्तव में यह समझ लिया था, कि एक अपरिचित व्यक्ति को पशु कहना तुम्हारा कर्त्तव्य था ?"

पुत्रने अपने आसन से उठ कर कहा, "आपके साथ इन सब बातों पर विचार करना ही व्यर्थ है! क्या आप समझते—"

"अच्छा! अच्छा!! तथापि मेरे पूछने का यह मतलब है, कि तुम्हारे उस व्यवहार का फल क्या हुआ था?"

"उस आदमी ने मेरी बात सुनकर अपनी स्त्री को इतने जोरों से धक्का दिया, कि वह स्त्री, उस कमरे में धड़ाम से गिर पड़ी! यह तो बहुत बुरा हुआ! अधिकारियों को इन सब बातों की ओर ध्यान देना चाहिये।"

"अधिकारियों का कर्त्तव्य है राज्य शासन करना; नैतिक उन्नति की ओर ध्यान देने की उन्हें कोई जरुरत नहीं"।

"मनुष्य की बात तो अलग रखिये—पशुओं के प्रति भी इससे अच्छा व्यवहार किया जाता है।"

"वत्स! **मनुष्य ही मनुष्य को सबसे अधिक यन्त्रणा भी देता है**। तुम सयाने होने पर यह और भी अच्छी तरह से समझ सकोगे। पर एक बार और तुमसे मैं पूछूंगा—उस व्यापार में हस्त-क्षेप कर तुमने क्या किसी का कुछ उपकार किया?"

अब शीलानन्द इधर उधर करने लगे। वृद्ध रेवत कहने लगा-"तुमने उस आदमी को शिक्षा देनेका विचार कियाथा; पर. ठीक उसके उलटा फल हुआ। तुमने जो स्त्री की सहायता करना चाहा था, उसका भी कुछ फल नहीं हुआ। तुम एक तीसरे आदमी थे—तुम्हारे अन्तः करण में विरक्ति और क्रोध

का उद्रेक हुआ था, अर्थात् तुमने व्यथित हो कर एक आदमी को पशु कह कर तिरस्कार किया था, इसमें तुम्हारा कोई बुरा मतलब नहीं था—इसमें कोईभी सन्देह नहीं, कि शिक्षा की कमी के कारण ही उस किसान ने अपनी स्त्री के साथ वैसा व्यवहार किया था। तुम्हारे व्यवहार से सबसे भारी भूल यह हुई, कि यह अनिच्छाकृत अपराध से इच्छाकृत अपराध का अपराधी होगया। अर्थात् तुमने अपने ही एक भाई के हृदय में असन्तोष का संचार किया।"

पिता की इस बात को सुन कर शीलानन्द ने घृणा के साथ हंस कर कहा, "क्या आप यह कहना चाहते हैं, कि उस गंवार किसान ने अपनी स्त्री को धक्का देकर पुण्य का काम किया था!"

"मैं तुमसे विशेष दृढ़ता के साथ पूछता हूं कि दूसरे के साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध है? अपनी ओर देखो। सब प्रकार से अपनी उन्नति करने की कोशिश करो। तुमसे एक भूल हो गयी है। एक आदमी ने तुम से भी ज्यादा भूल की है, यह उसे जानाने से क्या लाभ हुआ? जब तुम्हें भूख मालूम होती है, उस समय दूसरा तुमसे अधिक भूखा है, इसचिन्ता से क्या कोई लाभ होसकता है? मनुष्य यदि दूसरे के क्लेशकी बात भूल कर अपने ही क्लेशकी बात सोचता, तो यह पृथ्वी अधि सुखकर होती।"

"आप चाहे जो कहें, पर मैंने जो धर्म ग्रहण किया है,

उससे शिक्षा मिलती है, कि दूसरे की भलाई करना ही श्रेष्ठ धर्म है, दूसरे के लिये त्याग स्वीकार करना ही कर्त्तव्य है, दूसरे की भलाई की चिन्ता में अपनी बात बिलकुल भूल जाना ही परम कर्त्तव्य है । प्रेम से बढ़ कर उत्तम धर्म दूसरा नहीं है । ”

“ पृथ्वी पर प्रेम से बढ़ कर दोधारी तलवार दूसरी नहीं है । प्रेम के ऊपर प्रतिष्ठित धर्म का नाश हो । प्रेम के ऊपर स्थापित धर्म बालू की भींत पर खड़ी की हुई दीवार है । प्रेम तो कदली वृक्ष की डंटी है, क्या उससे कभी मजबूत लाठी बनायी जा सकती है ? इतने पर भी यदि तुम उससे लाठी बनाने को तय्यार हो, तो काम के समय समझ जाओगे, कि वह लाठी बनाने के लिये सर्वथा अनुपयुक्त है । तुम्हारा सारा परिश्रम व्यर्थ हो जायगा । ”

“ अच्छा, क्या आप ऐसे किसी वृक्ष का नाम बता सकते हैं, जिससे बहुत ही मजबूत लाठी बनायी जा सके ! ”

“ क्यों नहीं, वत्स ! वैसा वृक्ष ज्ञान वृक्ष है ! पृथ्वी के मनुष्य ज्ञान शब्द का जो मतलब समझते हैं, वह ज्ञान नहीं ; हमलोगों के बुद्धदेव ने ज्ञान के द्वारा जो शिक्षा दी है, वह वृक्ष !

सभी वस्तुएं अनित्य हैं, सभी क्लेश कर हैं और सभी वस्तुएँ ही आत्माहीन हैं ।

यह ज्ञान, हमलोगों के अन्तर से अन्तरतम प्रदेश में प्रवेश करता है—यह हमलोगों को बल देता है, हमलोगों की रक्षा करता है ।

"मैं यह सब खूब भली भांति जानता हूं—पर, ये सब इस पृथ्वी पर कुछ भी उपकार नहीं दिखाते।"

"इस का कारण और कुछ नहीं है; तुमने उन सूत्रों को केवल कण्ठस्थ कर लिया है; उनका प्रयोग करने की तुम्हें शिक्षा नहीं मिली है।"

"सभी लोग, यदि आपके समान अपने ही लिये चिन्ता करें, तो पृथ्वी का क्या लाभ होगा! ऐसी दशा में भला पृथ्वी की उन्नति कैसे होगी? सब की उन्नति की कोशिश ही हमलोगों का प्रधान कर्त्तव्य है—इस संसार में आने का यही उद्देश्य है!"

वृद्ध रेवत ने इस बात पर विरक्त हो मुंहसे पान फेंक दिया और कहा—"क्या तुम वास्तव में ऐसाही समझते हो? मैं तो समझता हूं, कि प्रत्येक मनुष्य का यह कर्त्तव्य है, कि वह ऐसी कोशिश करे, जिससे उसका अपना धर्म और नैतिक ज्ञान बढ़े। यदि दुनियां भर की कोशिश करने से वह बढ़े, तो अच्छा है। वैसी ही कोशिश की जाय। मेरा विचार है, कि जब कोई अनिर्दिष्ट फल पानेके लिये प्रयत्न शील होता है तो वह पहले अपना पथ निर्दिष्ट कर लेता है। जो कार्य भलो भांति निर्दिष्ट है, वह पुरुष को अहंभाव की ओर खींच ले जाता है। प्रत्येक मनुष्य उसी स्थान से कार्य करे; पृथ्वी का मंगल अवश्य होगा। प्रत्येक मनुष्य

अपना २ मंगल साधन करे—इसीसे पृथ्वी का मंगल होगा।"

शीलानन्द पिता की इस बात को घृणा के साथ सुन रहा था। रेवत आगे कहने लगा,—"मैं समझ रहा हूं, कि तुम किस जाल में फंसे हुए हो। इस क्षेत्र में जितना ही मनुष्य आगे बढ़ता है, वह उतना ही अधिक बन्धन में आवद्ध होता है। यहां पराजय में ही जय पायी जाती है। क्या तुम वास्तव में इस बात पर विश्वास करते हो, कि पृथ्वी की एक धारावाहिक उन्नति है। तुम लोग किसी प्रकार भी नहीं समझ सकते, कि उन्नति वाह्य नहीं है, उन्नति आन्तरिक है। बुद्ध की चिन्ता से ही प्रकृत उन्नति के चरम शिखर पर पहुंचा जाता है। जिस ज्ञान से सब से अधिक नैतिक उन्नति होती है और जिस चिन्ता से अहंभावका त्याग किया जाता है, उससे श्रेष्ठ और कुछ नहीं है।"

"यदि सब लोग समझे, कि चिन्ता के द्वारा अहंभाव का परिवर्तन करना ही श्रेष्ठ है, तो पृथ्वी के लिये वह बड़ा ही बुरा होगा।"

"इस बात से तुम्हारी मूर्खता प्रकट होती है। प्राचीन लोग, स्वर्ण-युग की कहानी कहा करते हैं, वल्कि फिर से उसी युग का आना अच्छा है। खैर, जो हो, तुम इसके लिये दुःखी न हो; ऐसे बहुत कम लोग हैं जो चिन्ता स्रोत को गभीरतम आत्मोन्नति की ओर प्रवाहित कर सकें और अपने को पहचान सकें। इस लिये पृथ्वी की उन्नति के लिये जो तुम कोशिश करते हो, वह कोशिश बहुत दिनों तक चलती रहेगी।"

"तो आप समझते हैं, कि आत्मोन्नति की अपेक्षा, अन्य किसी सेवा द्वारा कोई पृथ्वी का अधिकतर उपकार नहीं कर सकता?"

"आत्मोन्नति चुपचाप नहीं हो सकती। उसके लिये रात-दिन परिश्रम करना होगा और जब कोई अपनेको वास्तव में पूछे, कि मेरी कहां तक आत्मोन्नति हुई और इसपर समझे कि कुछ भी नहीं हुई, तो फिर उन्नति के लिये इस प्रकार परिश्रम करना होगा, कि शरीर के प्रत्येक रोम-कूप से पसीना निकल पड़े और ऐसा मनुष्य जैसे बिना दहने-बायें देखे केवल आत्मोन्नति की ओर ध्यान रखता है, वैसेही जब तुम अपनी अवस्था समझोगे, तब तुम भी किसी दूसरी ओर नहीं देखोगे और संसारका क्या होगा, ऐसा प्रश्न भी तुम

कभी नहीं करोगे"।

"कभी नहीं! लोक सेवाही मेरा सदाके लिये प्रधान कर्तव्य और प्रधान पुरस्कार है। हो सकेगा तो घटनाएँ आप-से-आप इस बातका प्रमाण देंगी, कि मेरा मार्ग आपके मार्ग की अपेक्षा कहीं श्रेष्ठ है"।

"वत्स! तुम अभी लड़के हो"।

इसी समय रेवत की कन्या और शीलानन्द की बहन वहाँ आ पहुंची, उसने अपने पिता से कहा, " इसाई धर्म के प्रचारकों की सहाताके लिये एक आदमी चन्दा मांगने आया है"।

इसके जवाब में रेवत ने कहा, "तुमतो सब हाल जानती ही हो। जोकुछ हो सके दे दो"।

पिता की यह आज्ञा सुनकर बालिका वहांसे चली गयी। शीलानन्द थोड़ी देर तक किसी चिन्ता में डूबा रहा। उसके पिता का अगाध विश्वास था, कि दान से पुण्य होता है। अपने पिता के उस विश्वास को कार्य में परिणत होते देख, पिता के प्रति उसकी श्रद्धा बढ़ गयी। पर तुरतही उसने उदासी के साथ पिता से कहा, "आप इसाई धर्म-प्रचारकों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, तोभी आप ने उन्हें दान क्यों दिया? अपने मनमें इसाई धर्म के प्रचारकों और उनकी कार्यावली को घृणा की दृष्टि से देखने पर भी आपने उनको दान दिया। आप इसी लिये दान करते हैं जिसमें बुद्ध की

आज्ञा अमान्य न की जाय। आप जिस काम को अच्छा नहीं समझते, उस काम की सहायता के लिये दान देते हैं। पर, यह निश्चय समझिये, कि जो दान, श्रद्धा के साथ नहीं दिया जाता उस दान से कभी पुण्य नहीं होता "।

"तुम अपने पिता के प्रति बड़ा अन्याय कर रहे हो। मैं ने जन्म से ही दान करने की शिक्षा पायी है। तुम्हारा कहना अवश्य ठीक है—मैं ने श्रद्धा के साथ यह दान नहीं किया है; अपने श्रेष्ठ मार्ग की ओर दृष्टि रखते हुए ही यह दान किया है। पुण्यार्जन का ऐसा सुन्दर उपाय दूसरा नहीं है। मैं अपने अनुकूल जो दान देता हूं, उसके लिये मैं इस बातका विचार नहीं रखता, कि किसको किस लिये दान दे रहा हूं। तुम यदि स्थितिका सचमुच ऐसा ख़याल रखते हो, कि दानके साथ प्रवृत्तिका घोर सम्बन्ध है तो तुम्हारे मत से जो काम अच्छा हो, उसी काम के लिये तुम दान करना। पर कौन काम अच्छा है और कौन काम बुरा है, इसकी परीक्षा कैसे हो सकती है? तुम कैसे समझ सकते हो, कि कौन काम वास्तव में उत्तम है—अथवा उत्तम के आवरण में जो छिपा हुआ है, वह बुरा के सिवाय और कुछ नहीं है? आज एक आदमी को दान देते समय यदि तुम उससे भी अधिक उपयुक्त याचक को निराश कर दो, तब? अहं भाव का परित्याग करने से ही दिशा का निर्णय परित्याग करने वाले जहाज की तरह मनुष्य हो सकता है।"

थोड़ी देर मौन रहने के बाद फिर वृद्ध ने कहना आरम्भ किया,—"यह बात बिलकुल सत्य है, कि मैं इसाई धर्म का प्रचार करने वालों की कार्यावली के प्रति अनुरक्त नहीं हूं ; पर इसका कारण यह है, कि तथागत ने जैसा बताया है, वैसे उच्च स्थान पर अभी मैं नहीं पहुंच पाया हूं। मैं यदि उतने उच्च स्थान पर पहुंच सकता, तो मेरे हृदय में पृथ्वी की किसी बस्तु के प्रति घृणा का भाव नहीं रहता।"

शीलानन्द, कुछ देर के वाद वहाँ से उठ कर चला गया— वह समझ गया, कि जिस पिता ने सदा से उसको अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय माना है, उसी के हृदय में उसने व्यर्थ ही कष्ट पहुंचाया है।

शीलानन्द ने अपने गृह से चल कर प्रचारकों के गृह की ओर प्रस्थान किया। प्रचारक स्टीवेन्सन ने उससे मिलने की इच्छा प्रकट की थी।

इस समय मिशन की ओरसे कितने ही बड़े बडे काम हो रहे थे। बहुत ही थोड़ें दिन पहले से केलानी नामक स्थान में इसाई-धर्म में दीक्षित उस देशमें रहने वाले मनुष्यों का उपनिवेश स्थापित हो रहा था,—इसका उद्देश्य यह था, कि वे लोग अपने पूर्व धर्मावलम्बी मनुष्यों से दूर रहें। अब से पहले ये लोग अपने-अपने झोंपड़ों मे ही रहते थे—केवल कोलम्बों से इसाई-प्रचारक बीच बीच में इनके निकट आ

जाया करते थे। किन्तु, सम्प्रति कुक नामक एक व्यापारी ने इन सब नव दीक्षित व्यक्तियों के रहने के लिये गृह, भूमि इत्यादि दान में दिया था और स्टीवेन्सन ने प्रचारकों के अध्यक्ष की हैसियत से निर्णय किया, कि शीलानन्द ही अध्यक्ष के रूप में इन लोगों के साथ रहें।

जिस कमरे में प्रचारक बैठे हुए थे, शीलानन्द, उसी कमरे में जा पहुंचा। उसको देख कर स्टीवेन्सन ने कहा—"मित्र! हम सब लोगों ने एक स्वर से स्थिर किया है, कि यह उपनिवेश, तुम्हारी ही अधीनता में रखा जाय। क्या तुम यह कार्य ग्रहण कर सकोगे?"

"आप तो जानते ही हैं, कि ऐसे काम के लिये मैं बराबर तैयार रहता हूं।"

इस पर स्टीवेन्सन ने कहा, "मैं यह जानता हूं—खूब अच्छी तरह से जानता हूं। अवश्य तुम से यह कह देना भी उचित होगा, कि वर्त्तमान परिस्थिति में—विशेषतः इस समय—तुम को कुछ वेतन देने का सामर्थ्य हमलोगों में नहीं है।"

"यह कहना व्यर्थ होगा, कि वेतन मिलने पर मैं यह कार्य नहीं ग्रहण करता।"

"साधु! तुमने यह ज़रूर सुन रखा होगा, कि कुक साहब इस काम के लिये कुछ रुपये खर्च करने को प्रस्तुत हैं। एक सुन्दर मकान बनवाया जायगा और अशिक्षित लोगों

के लिये शिक्षा का प्रबन्ध रहेगा। तुम ज़रूर यह समझ रहे हो, कि ईश्वर की इच्छा से और उनके शुभ आशीर्वाद से तुम्हारे सामने विस्तृत कार्य क्षेत्र प्रसारित कर दिया गया है तथा तुम इस काम में सफल-मनोरथ हो ओगे, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं है।"

इस के जवाब में शीलानन्द मुंह से कुछ नहीं बोलसके—किन्तु शीलानन्द के दीप्तिमान नेत्रों से स्टीवेन्सन की बातों का उत्तर साफ मालूम हो रहा था।

स्टीवेन्सन कहने लगे "प्रतिदिन तुम्हें उस स्थान पर जाना होगा, सभी कामों की देख-रेख करनी होगी और सब को शिक्षा तथा उत्साह देना होगा। जब मकान तैयार हो जायगा, तब तुम उसी मकान में रह भी सकोगे और वहाँ रहकर ऐसा प्रयत्न करना होगा, कि जिससे अपने शिष्यों के साथ तुम्हारा घनिष्ट सम्बन्ध हो जाय। मैं तुम्हें आदर के साथ बुला रहा हूं।" इस बात की समाप्ति के साथ-साथ स्टीवेन्सन साहब ने जब अपना हाथ फैला दिया, तब शीलानन्दने बड़े आदर के साथ उनसे हाथ मिलाया।

अबतक सेक्रेटरी रास साहब चुपचाप बैठे हुए थे; अब वे बोले, "देखिये मिस्टर शीलानन्द! आप ऐसा न समझियेगा, कि आपके सम्बन्धमें सचमुच हम सब लोग, एक मत हैं। अन्यान्य कुछ लोगों के नामों पर भी विचार किया गया था। गिरजे के किरानी मि० क्लार्क का नाम भी हमलोगों के सामने आया था। क्लार्क में एक विशेष गुण

यह है, कि वह श्वेत द्वीप का रहने वाला है।" ज्यों ही रास साहब ने बोलना आरम्भ किया था, त्यों ही स्टीवेन्सन इधर उधर करने लगे थे। शीलानन्द, स्टीवेन्सन की बातें चुपचाप सुनता जाता था। रास कहने लगा, "हां, यह बात मैं ठीक नहीं कह सकता हूं, कि श्वेत द्वीप का रहने वाला होने के कारण ही, कृष्ण द्वीप में रहने वाले लोगों की अपेक्षा, अधिकतर कार्य कुशल होता है; दूसरी बात यह है कि इस देश की भाषा और आचार व्यवहार आपका जाना हुआ होने के कारण, आपको विशेष सुविधा होगी।"

स्टीवेन्सन ने गम्भीर भाव से विरक्ति पूर्ण शब्दों में कहा "मि० रास! मैं ने आपसे पहले ही कह दिया था, कि क्लार्क बहुत शराब पीने वाला है, इसके सिवा वह निरा मूर्ख है।"

"अवश्य! अवश्य! यह उसके दोष हैं और इसीलिये हमलोगों ने उसको उक्त पद पर नियुक्त नहीं किया है। पर—मि० शीलानन्द! हमलोग आपके पिता के सम्बन्ध में सोचरहे थे।" शीलानन्द ने प्रतिष्ठा के साथ इसके उत्तर में कहा "मेरे पिता बड़े सज्जन हैं।" रास ने कहा, "हां सो तो निश्चय ही होगया। उस सम्बन्ध में कोई सन्देह होने का कारण नहीं है। पर, आप तो यह स्वयं अच्छी तरह से जानते हैं, कि वे हमलोगों के प्रचार-कार्य को पसन्द नहीं करते।"

शीलानन्द ने इसके उत्तर में कहा, "मैं अपने मतामत को अच्छी तरह समझ सकता हूं।"

रास ने कहा, "हां, वही सोच कर हमलोगों ने आपको चुना है। इसी कारण तो इतने बड़े दायित्व पूर्ण कार्य का भार आपके ऊपर रख रहे हैं। खैर, जो हो, अब काम की बात हो। आपकी अवस्था कितनी है?"

"पच्चीस साल की।"

रासने यह लिख लिया।

"आपका जन्म कहां हुआ था?"

"मातोयालामें।"

"क्या आपके माता-पिता दोनों सिंहल द्वीप के रहने वाले हैं?"

कुछ आश्चर्य के साथ शीलानन्द ने इसके उत्तर में कहा "हां, महाशय।"

"आपने कहां शिक्षा पायी थी?"

"क्यों? आप तो यह सब बातें जानते ही हैं?"

स्टीवेन्सन ने मधुर हँसी हँस कर कहा,-"नियमानुसार रास साहब इन सब बातों को पूछ कर लिख रहे हैं; इसका कारण यह है, कि यह सब लिख कर हमलोगों को अपने हेड आफिस में भेजना होता है।" फिर रास साहब ने पूछा,--"आपने कहां शिक्षा पायी थी?"

"पहले कोलम्बो में इसके बाद कलकत्ते में"। "धन्यबाद! जहां तक जल्द हो सकेगा, आपको नियुक्ति-पत्र मिल जायगा।

इसमें तो अब कुछ भी सन्देह नहीं है, कि आप विना वेतन लिये हुए काम करने को तैयार हैं ।"

"यह तो मैं पहले ही कह चुका हूं"।

"अच्छा! अच्छा! इतना कह कर रास साहब, जिस किताब पर ऊपर की बातें नोट कर रहे थे, उसको बन्द कर दिया ।

अब मि० स्टीवेन्सन के जी में जी आया । अब वे उच्च स्वर में बोले,—"अच्छा, यह सब तो हो गया—अब हम आज के लिये दूसरे काम को जा रहे हैं"। इसके बाद शीलानन्द की ओर देख कर बोले,—"आज चा पीने के लिये आपको निमन्त्रण दे रहे हैं"। शीलानन्द के धन्यवाद देने पर अन्यान्य सब लोग वहां से चले गये । सब के चले जाने पर स्टीवेन्सन ने शीलानन्द से कहा,-"एक मिनट के लिये आप मुझे क्षमा कीजियेगा"। इतना कह कर वे बगल के कमरे में चले गये । रास साहब ने जो दुर्व्यवहार किया था, उसीके लिये स्टीवेन्सन ने शीलानन्द को आज निमन्त्रित किया । उनकी स्त्री मर गयी थी—एकमात्र कन्या के सिवा, इस संसार में उनका अपना कोई नहीं था। पांच वर्ष विलायतमें रहने के बाद कल वह कोलम्बो में पहुंची है। स्टीवेन्सन को यह नहीं मालूम था, कि इस देश के लोगों के प्रति मेरी कन्या का क्या भाव है। शीलानन्द को निमन्त्रण देने के बाद उन्हें इस बात का ख़याल हुआ । इसीसे कन्या को पहले से ही दो-एक बात कह कर सावधान करदेने की इच्छा हुई—जिससे रास द्वारा किया हुआ छेद, उनकी कन्या और बढ़ा न दे ।

शीलानन्द, वराण्डे में इधर उधर घूमने लगा। स्टीवेन्सन ने उसको बुला कर अपनी कन्या हेनेरीएटा के साथ परिचय करा दिया। हँसती हुई हेनरीएटा ने हाथ फैलाकर शीलानन्द का हस्त ग्रहण किया; इसके बाद तीनों आदमी, मिल कर चाय को टेबिल पर जा कर बैठ गये।

हेनरीएटा बोली, "आपही मि० शीलानन्द हैं। पिताने आपके सम्बन्धकी सारी बातें मुझसे कही हैं— आपने इसाई धर्म का प्रचार करने के लिये आत्मोत्सर्ग कर दिया है। आपके साथ परिचय होनेसे अपने को मैं परम सौभाग्य वती समझती हूं। आपको शायद मालूम होगा, मैंने भी धर्म-प्रचार के लिये जीवन उत्सर्ग करने के अभि-प्राय से यहाँ आयी हुई हूं। आशा करती हूं, हम दोनों एक साथ काम कर सकेंगे।"

शीलानन्द को यह नहीं मालूम होता था, कि मैं इसका जवाब क्या दूं,। हेनरीएटा कहने लगी, "आपने बौद्ध धर्म परित्याग कर इसाई धर्म ग्रहण किया है। आपकी दृढ़ता प्रशंसनीय है। विशेषतः, अर्थ के साथ आपके इस साधु प्रस्ताव का कोई सम्पर्क नहीं है। अर्थ के लिये नवीन धर्म ग्रहण करना, मेरे विचार से ठीक नहीं है। परन्तु आपका त्याग स्वर्गीय है।"

अबभी शीलानन्द कुछ भी नहीं बोले! हेनरीएटा कहने लगी, "देखिये! मैंने भी अनेक धर्म के सम्बन्ध में अलोचना की है। यह ठीक है, कि अपने धर्म पर किसी

प्रकार का सन्देह न कर मैं ने ऐसा किया है। अन्तःकरण की क्षुधा के वशवर्ती हो कर मैं ने ऐसा किया है। पर, जन्म-भूमि को लौटने के समय जसे जन्म-भूमि ज्यादा सुन्दर मालूम होती है, वैसे ही अन्य धर्म के सम्बन्ध में आलोचना करने के बाद अपने धर्म के प्रति अधिक अनुरक्त हो गयी हूं।"

स्टीवेन्सन ने पूछा "हेनरीएटा! क्या यह विपज्जनक परीक्षा नहीं है?" स्टीवेन्सन स्वयं दूसरे किसी धर्म की आलोचना करना पसन्द नहीं करते थे।

"नहीं, पिता! मेरा धर्म अन्तर्निहित है, यह किसी प्रकारभी विचलित नहीं हो सकता। यह इतना गभीर है, कि दूसरे धर्म के गुणों का ग्रहण करने से कलङ्कित नहीं होता। यही बौद्ध धर्म को लीजिये। आध्यात्मिकता के हिसाब से सभी धर्मों में यह सुन्दर है।"

स्टीवेन्सन ने कहा, "सो कैसे?"

इसके उत्तर में कन्याने कहा, "क्यों? पृथ्वी पर जितने धर्म हैं, सभी धर्मों में बौद्ध धर्म ही ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार नहीं करता और इसी लिये यह धर्म, केवल ज्ञान के द्वारा ग्रहण किया जा सकता है।"

"किन्तु बौद्ध धर्म में तो देवताओं की कमी नहीं है।"

"यद्यपि आपका यह कहना सत्य है; किन्तु ये लोग रङ्गमञ्चके सहायक मात्र हैं। **वास्तविक नायक है कर्म।**"

"तुम किस कर्म का उल्लेख करती हो?"

"मैं बौद्ध धर्म के ही कर्म की बात कहती हूं। प्रत्येक कार्य का ही फल होता है; जैसा शरीर के साथ छाया का सम्बन्ध है, कर्म के साथ फल का भी वैसा ही सम्बन्ध है और जैसा कर्म किया जाता है, वैसा ही फल भी मिलता है। इस लिये न तो दाहिने देखने की ज़रूरत है और न बायें, केवल अपने प्रति और अपनी कार्यावली के प्रति लक्ष्य रखना चाहिये। बौद्ध-धर्म का यही मूल मन्त्र है। हाँ, ऐसे लौह-दण्ड के नीचे सर्वदा रहना भयावह अवश्य है।"

शीलानन्द ने कहा, "किन्तु, तथापि **जीवन जिसके लिये दुःखमय है, बौद्ध धर्म उन्हीं के लिये है।**"

"ठीक है; जहां ईश्वर पर विश्वास नहीं है, वहां जीवन गतिशून्य हो जाता है; इसीसे जीवन दुःखमय हो जाता है।"

शीलानन्द ने इसके उत्तर में कहा, "देखता हूं, इस विषय में आपने बहुत कुछ अध्ययन किया है। इस दृष्टि से क्या आप समझती हैं, कि बौद्ध-धर्म का यथेष्ट स्वाभाविक स्थान है? अर्थात् आप क्या खयाल करती हैं, कि पृथ्वी पर अविश्वासी लोगों का दल ही अधिक है?"

"ईश्वर को धन्यवाद देती हूं, कि वास्तव में अविश्वासियों का दल अधिक नहीं है। ऐसा होता तो हमलोग धर्म का

प्रचार करने के लिये यहां क्यों आते ? मेरा विश्वास है, कि प्रत्येक स्वस्थ मनुष्य धर्मानुरक्त है और इस ओर लोगों का मन प्रेरित कर सकने से ही काम हो सकता है । जो बिल्कुल अविश्वासी हैं, उनको कोई धर्म विश्वासी नहीं कर सकता । विश्वास परिवर्त्तन या रूपान्तर ही का नाम है, धर्म परिवर्त्तन ।"

शीलानन्द बड़े ध्यान के साथ हेनरीएटा की बातें सुन रहा था । उसकी प्रदीप्त आंखें देख कर मिसनरी कन्या उत्साहित हो कहने लगी " किसी हलकी चीज़ को चाहे जितना जल में डुबाओ, वह ऊपर आ कर तैरने ही लगेगी, वैसे ही बौद्ध धर्मावलम्बी को अन्य धर्म में दीक्षित करने पर भी वह फिर बौद्ध धर्म में लौट जायगा । **विश्वास परिवर्तन या रूपान्तर का ही नाम है धर्म परिवर्तन ।"**

शीलानन्द सोचने लगा, " किसी हलकी चीज़ को चाहे जितना जल में डुबाओ वह ऊपर आ कर तैरने लगेगी, वैसे ही बौद्ध धर्मावलम्बी को दूसरे धर्म में भले ही दीक्षित करो, वह फिर बौद्ध धर्म में लौट जायगा ! यह कैसे आश्चर्य की बात है ! अपने पितृ—पितामह के धर्म के सम्बन्ध में उसने इस प्रकार कभी नहीं सोचा था । उसके धर्मान्तर ग्रहण करने का क्या यही कारण है ? क्या इसी विश्वास ने उसे बौद्ध धर्म से अलग कर ईसाई धर्म ग्रहण कराया है ? क्या वास्तव में उसका वही स्वाभाविक विश्वास है ? उसने स्वयं तो कभी ऐसा विचार नहीं किया है ।"

हेनरीएटा कहने लगी, " मालूम होता है, कि आप मेरी राय से सहमत नहीं हो रहे हैं। हो सकता है कि मैं गलत समझ रही हूं। जो हो, इस सम्बन्ध में फिर मैं आपके साथ विचार करूंगी, क्योंकि मैं सभी बातें अच्छी तरह से नहीं समझ सकती हूं।"

" मेरे क्षुद्र सीमाबद्ध विचार में जो आवेगा, उसे आपको समझाने में मुझे विशेष आनन्द होगा। परन्तु मुझे इस बात की आशंका हो रही है, कि आप इतना अधिक जानती हैं कि मैं कोई भी नयी बात आपसे नहीं कह सकूंगा "।

" आपने मेरे ज्ञान के सम्बन्ध में बहुत ज्यादा अन्दाजा लगा लिया है।"

स्टीवेन्सन फिर बोल उठे, " मैं जहाँ तक समझता हूं, हेनरीएटा ! तुमने इस बीच में जितना पढ़ लिया है, वही बहुत ज्यादा हो गया है। क्या तुमने यह नहीं पढ़ा है, कि अन्तिम विचार के दिन जो ज्ञान हमारे किसी काम में नहीं आवेगा, उस विषय का अध्ययन करने से हमलोगों को कुछ भी फल नहीं मिलेगा ? " इतना कह कर वे वहां से उठे और खिड़की की ओर देखने लगे।

उस ओर देखते ही वे कह उठे, " कुक साहब शिकार खेलने जा रहे हैं। इस अवस्था में इस समय इनको यह सब न करना ही अच्छा है।"

हेनरीएटा ने कहा, " क्यों ? यह शीत काल ही तो शिकार का अच्छा समय है।"

" हां, शीत काल आरम्भ हो गया है सही; सामुद्रिक हवा के बहने से ज्वर और इन्फ्लुएञ्जा का प्रकोप ज्यादा है।"

हैनरीएटा ने कहा, " कुक साहब कौन हैं ? जिन्होंने केलनी के उपनिवेशमें मकान आदि बनवाने के लिये अर्थ-दान किया है, क्या वही कुक साहब हैं ? "

" हाँ! विशेषता तो यह है, कि ये कोई ज्यादा धनी आदमी नहीं हैं। "

" तब तो ये बड़े महान् मनुष्य मालूम होते हैं। मैं तो समझती हूं एक इसी कारण से कोई भी युवती, इनको प्यार कर सकती है। "

स्टीवेन्सन ने हँस कर कहा, " जिसने तुमसे अधिक धार्मिक पुस्तकें पढ़ी हैं केवल वही ऐसा कर सकती हैं। वास्तव में दान शीलता की अपेक्षा सुन्दरता जिसमें अधिक रहती है, वही युवक, विवाह की इच्छा रखने वाली युवतियों के चित्त को चुरा सकता है। "

इसके उत्तरमें हैनरीएटा ने गम्भीरता के साथ कहा, " मुझे सन्देह होता है, कि आप मानव चरित्र से पूरा अभिज्ञ नहीं हैं। "

" मैं गलत नहीं कह रहा हूं। मैं तो समझता हूं, कि अविवाहिता युवतियों की आत्माएँ, जैसा आत्म-समर्पण कर सकती हैं, वैसा और कुछ भी नहीं कर सकतीं। "

हैनरीएटा, पिताके इस उत्तरसे सन्तुष्ट नहीं हुई। उसने "मैं आत्मोत्सर्ग की बात नहीं कहती हूं" इतना कहने के बाद शीलानन्द की ओर देख कर कहा, "आपका भविष्य, बहुत उज्वल है। आपके साथ रह कर मैं काम कर सकूंगा यह मेरे लिये बड़े सोभाग्य की बात है। उपनिवेश में मकान बन जायगा, तो कैसा सुन्दर मालूम होगा! असल बात तो यह है, कि इच्छा रहने पर क्या नहीं होता। कुछ वर्ष पहलें मैं जब जर्मनी में भ्रमण करने गयी थी—"

शीलानन्द ने बड़े आश्चर्य में आकर उसकी ओर देखा। हेनरीएटा बोली, "आप ऐसा न समझियेगा, कि मैं प्रचुर धन-सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी हूं।" स्टीवेन्सन ने हँसते हुए कन्या की ओर देख कर कहा, "भगवान जाने।" हेनरीएटा ने उस बात पर कान न दे कर कहा, "मैं बहुत मितव्ययी हूं, मेरा अभाव बहुत कम है और इसीसे धनी मनुष्य भी जो काम नहीं कर सकता, उससे अधिक काम मैं कर सकती हूं। जो हो, जब मैं बर्लिन में थी, तब वहाँ एक कुरूप युवतीके साथ मेरी जान-पहचान हुई। कुरूप होने पर भी भगवान में उसका बहुत अधिक अनुराग ओर अगाध विश्वास था। यह युवती कितने ही ऐसे बालक बालिकाओं का भरण-पोषण करती है, जिनके माता पिता ने त्याग कर दिया है। वह शहर के एक कोने में कुछ छोटे कमरे भाड़े पर ले कर, भिक्षा द्वारा उन लड़के

लड़कियों का भरण-पोषण करती थी। धीरे-धीरे उसका कार्य क्षेत्र फैलने लगा। बालक बालिकाओं की संख्या बढ़ने लगी। हाथ में कुछ सञ्चित किया हुआ धन न रहने पर भी, पहले उसने जिस मकान के कमरों को भाड़े पर लिया था, अब उस समूचे मकान को भाड़े पर ले लिया। उस के पास धन तो नहीं था पर भगवान के प्रति उसको प्रगाढ़ विश्वास था। अब उन्हीं भगवानकी कृपा से वह छोटा सा मकान, एक वृहत् अट्टालिका के रूपमें परिवर्तित हो कर भगवान की महिमा का कीर्त्तन कर रहा है। इस बात से मालूम होता है, कि मनुष्य में कितनी शक्ति है, कि जिस शक्ति का स्मरण करने से हृदय आनन्द से नाचने लगता है।"

शीलानन्द ने कहा, "मैं समझता हूं कि मनुष्यों के हृदयों में भगवान और असुर दोनों रहते हैं।"

मानो, हेनरीएटा ने इस बात को सुना ही नहीं। वह ऊपर की बातें कहते समय धीरे धीरे बहुत उत्तेजित और विचलित हो गयी थी। स्टीवेन्सन इस बीच में अपना अख़बार लेकर बैठे हुए थे। अब वे हेनरीएटा को सम्बोधन कर के बोले, "देखो, जाफना की कई तामील स्त्रियों के कैसे सुन्दर चित्र हैं!" हेनरीएटा ने उस पत्र को लेकर कहा,—"सचमुच ये चित्र बहुत सुन्दर हैं। क्या जाफना दक्षिण भारत वर्ष में है?" अपनी कन्या की इस बात पर हँस कर स्टीवेन्सन ने कहा, "देखता हूं, तुम्हें भूगोल का ज्ञान बहुत ज्यादा

हो गया है । जाफना, यहांसे उत्तर है"। "जो हो, मैं अपने लिये जिसको ज़रूरी समझूंगी, उसको जल्द ही सीख लूंगी" । शीलानन्द ने संयतभाव से कहा, "इस विषयमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है ।"

मिस स्टीवेन्सन, कृतज्ञतापूर्ण हृदय से उसकी ओर देख कर कहने लगी, " भारतीय स्त्रियों की ओर देखने से ही मालूम होता है, कि वे बहुत धीर और शान्त स्वभाव की होती हैं । मैं उन्हें खूब प्यार करती हूं । युरोप के धनी घर की स्त्रियां तो अभिमान में चूर रहती हैं ; उन्हें देखने से मालूम होता है, कि वे बराबर चंचल रहती हैं ।"

शीलानन्द ने पूछा, " क्षमा कीजिएगा, मैं आप से यह पूछना चाहता हूं, कि आप अपने को किस दल की समझती हैं--युरोपीय या भारतीय ? "

" मैं भारतीय महिलाओं को ही प्यार करती हूं " पर, उसकी आंखों से ऐसा नहीं मालूम हुआ ।

स्टीवेन्सन ने कहा, " बेटी ! मैं कायमनोवाक्य से आशीर्वाद देता हूं, कि तुम से युरोपीय और भारतीय दोनों मिल जांय ।" उनका विचार था, कि अब इस प्रसंग को त्याग कर कोई दूसरा प्रसंग छिड़ना चाहिये । पर, उनकी कन्या, यह प्रसंग छोड़ने के लिये तैयार नहीं थी । वह शीलानन्द को लक्ष्यकर बोली, " आपसे मैं निश्चय कर के कह सकती हूं, कि युरोपीय स्त्रियों का अभाव अत्यन्त अधिक

है । शताब्दियों से पुरुष उनसे कहते आ रहे हैं, कि " हमलोग तुम्हारे ख़रीदे हुए गुलाम हैं " । फल इसका यह हुआ है, कि अब तक स्त्रियाँ पुरुषों से अपने एक इसी अधिकार का दावा करती आ रही हैं ; इधर पुरुष रुकावट डालते हैं और स्त्रियां इस पर आश्चर्य में आ सकती हैं । यह अत्यन्त मूर्खता का काम है । वे यह नहीं समझतीं, कि जितने दिनों तक दावा नहीं किया जाता है, उतने ही दिनों तक उनकी प्रधानता, मनुष्य स्वीकार करता है ।"

शीलानन्द ने इसके जवाब में कहा, " मैं समझता हूं, कि वे पुरुषों के ऊपर क्षमता चाहती हैं—प्रधानता नहीं चाहतीं । "

हेनरीएटा ने कहा, " अच्छा, विचार कर देखिये, कि स्त्रियों का अपना पूर्व पद बना रहे और उस पर से साधारण कामों में समान क्षमता हो, तो मूलतः उनकी प्रधानता ही हुई । एक ओर विजय प्राप्त करने के लिये दूसरी ओर कुछ त्याग स्वीकार करना ही पड़ता है; मेरे विचार से तो स्त्रियों को अपनी प्रधानता छोड़ कर अपनी शक्ति और सुन्दरता ले कर रहना ही उचित है । "

शीलानन्द इसके उत्तर में बोला, " ज़रूर, अपने मनमें समझना होगा, कि प्रत्येक पुरुष अपनी स्त्री और परिवार के ऊपर हुकूमत करने का अधिकारी है । हां, यह बात दूसरी है, कि कितने ही लोग ऐसी हुकूमत नहीं करने चाहते । "

इस पर हेनरीएटा कुछ लज्जित हो कर बोली, " ज़रूर !

ज़रूर !! इस प्रधानता के सम्बन्ध में इतनी बातें कहने के लिये याद आती हैं, कि उन सब पर विचार करना सम्भव नहीं है।"

शीलानन्द भी कुछ संयत हो कर बोला, "मैं समझता हूं, कि स्त्रियां, आधुनिक सभ्यता की सब से श्रेष्ठ वस्तु हैं।"

इस बात पर हेनरीएटा को कुछ आश्चर्य हुआ। बीसवीं शताब्दी का कोई मनुष्य, क्या अच्छे अभिप्राय से ऐसी बात कह सकता है? किन्तु शीलानन्द की ओर देख कर वह समझ गयी, कि किसी बुरे मतलब से ये यह सब नहीं कह रहे हैं। भारतवर्ष वही पुराना भारतवर्ष है। उसने जवाब में कहा, "आपकी बातों का जवाब देना मेरे लिये कठिन है। पर, हां, यह इतना मैं कह सकती हूँ कि विवाह ही यदि रमणी जीवन का एकमात्र उद्देश्य हो, तो ऐसे जीवन को धिक्कार है।"

स्टीवेन्सन अपने समाचारपत्र को ही लेकर उलझे हुए थे, शीलानन्द ठीक उत्तर नहीं दे सकता था। इस सम्बन्धमें उसने पहले कुछ भी विचार नहीं किया था। सौभाग्य से इसी समय नौकर, रोशनी ले आया। सन्ध्या हो गयी; अब यहां रहना उचित नहीं, ऐसा समझ कर शीलानन्द ने वहाँ से घर लौट जाने की आज्ञा माँगी। मिस स्टीवेन्सन ने हाथ फैला कर अभिनन्दन करते समय कहा, कि "हमलोगों की चिर मैत्री, जिसमें बराबर बनी रहे"।

मि० स्टीवेन्सन के मकानसे शीलानन्द का मकान बहुत दूरी पर था ; आज मिस स्टीवेन्सन से जो उसकी बातचित हुई थी उसी पर विचार करने में इतना मशगूल हो रहा था, कि उसे यह नहीं मालूम हुआ, कि इतना लम्बा रास्ता कैसे कट गया। उस समय शीलानन्द, चिन्ता के विशाल समुद्र की भयङ्कर तरंगों के आघात से व्याकुल हो रहा था। उसे ऐसा मालूम हो रहा था, मानो, आजही से मेरा जीवन आरम्भ हुआ है। उसने भगवान को पुकार कर कहा, "सामने कार्य क्षेत्र है। इस क्षेत्र में रह कर, मैं साधारण जानता से कुछ ऊपर उठ कर काम करने की शक्ति और सामर्थ्य आप से माँग रहा हूं।"

अपने मकान पर अपने कमरे में जाकर शीलानन्द ने देखा, कि नौकर अभी रोशनी नहीं जला गया है। दूसरा कोई दिन रहता, तो इस पर वह नौकर का तिरस्कार करता ; पर, आज इस बात की ओर उसका ध्यान ही नहीं है। अन्धेरे में ही उसने अपना कपड़ा उतारा। आज उसका हृदय आनन्द से उत्फुल्ल हो रहा है।

दूसरे दिन प्रातः काल ही उसने रास साहब के यहाँ से अपनी भावी कार्यावली के सम्बन्ध में एक लम्बा-चौड़ा आज्ञा-पत्र पाया। शीलानन्द को प्रार्थना करनी होगी ; बालक बालिकाओं को शिक्षा देनी होगी और सब से अधिक ध्यान इस बात पर रखना होगा, कि नियम का पालन ठीक

तौर से हो रहा है या नहीं। पर उसने देखा, कि उन लोगों से नियम का पालन कराना बड़ा कठिन काम है। पहले तो वे लोग नये ढंग से रहने नहीं चाहते थे ; आहार-विहार में किसी प्रकार का परिवर्त्तन उन्हें अभीष्ट नहीं था। किसी प्रकार कुछ दिन बीत गये।

एक दिन सन्ध्या के समय उसने स्टीवेन्सन का एक पत्र पाया, जिसमें शीघ्र भेंट करने के लिये लिखा हुआ था। वहाँ पहुंच कर शीलानन्द ने देखा, कि पिता-पुत्री बहुत उदास बैठे हैं। कारण पूछने पर मालूम हुआ, कि कुक साहब अकस्मात् मर गये। इसका फल यह हुआ, कि उन्होंने जो धन देने का वादा किया था, वह इनलोगों के हाथ नहीं लगा और उपनिवेश के सम्बन्ध का सारा विचार मिट्टी में मिल गया। वह सब जान-सुन कर शीलानन्द ने पूछा, कि कितने रुपयों से यह काम हो सकता है,। इस पर स्टीवेन्सन साहब ने कहा, "कम-से-कम तीन हजार रुपयों की आवश्यकता होगी। इतने रुपयों के संग्रह करने का कोई उपाय नहीं है, और यहाँ काम इतना आगे बढ़ गया है। हमलोगों का यह विचार कार्यरूप में परिणत नहीं किया जायगा, तो बड़ी हँसी होगी।"

शीलानन्द ने बड़े ज़ोशमें आकर कहा "शायद रुपयों का प्रबन्ध मैं भी कर सकूंगा।"

स्टीवेन्सन ने कहा, "परन्तु ऋणके रुपयों से हमलोगों का काम नहीं चलेगा।"

शीलानन्द, "यह मैं अच्छी तरह से समझ रहा हूं।"

स्टीवेन्सन ने कहा, "हमलोग यह अच्छी तरह से जानते हैं कि तुम्हारे पिता बहुत बड़े धनी हैं। किन्तु—"

शीलानन्द ने इस के उत्तर में कहा, "मेरे पिता, किसी प्रकार भी आप लोगों को रुपये नहीं देंगे। पर, हमारी माता हमलोगों के लिये कुछ धन रख गयी है, यह ठीक ठीक मुझे नहीं मालूम है।"

स्टीवेन्सन कहने लगा, "शीलानन्द! तुम खूब सोच समझ कर देखो। तुमने एक प्रकार से नौकर की हैसियत से हमलोगों के काम में हाथ बटाया था, अवश्य इस समय अवैतनिक काम था, पर पीछे तनख्वाह ज़रूर मिलती। इसी शर्त पर हमलोगों ने तुम्हें नियुक्त किया था। पर इस समय यदि तुम से हम लोगों को रुपये मिल जाँय, तो तुम्हारे साथ हमलोगों का वैसा कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा।"

पादरी साहब की इन बातों से शीलानन्द ने समझा कि यह मुझे बेंत मार रहा है; अब तो केवल मेरे काले चमड़ेका उल्लेख करना ही बाकी है। धीरता के साथ शीलानन्द ने कहा "क्या आप मेरी बातों पर विश्वास नहीं करते।"

स्टीवेन्सन ने कहा, "तुमने मेरी बातों का उलटा मतलब समझा है। मेरे मन में वैसी कोई बात नहीं है। तुम यह जानते हो, कि इस उपनिवेश के सम्बन्ध में हमलोग कितनी कार्रवाई कर चुके थे। इसीलिये ऐसी स्थिति में

तुमसे रुपये पाने पर, तुम्हारी कृतज्ञता का वर्णन करने के लिये हमलोगों के पास शब्द नहीं मिलेंगे ।”

“अभी मैं कोई प्रतिज्ञा नहीं कर सकूंगा; पर मुझे दृढ़ विश्वास है, कि आवश्यक रुपये मैं दे सकूंगा। मैं कल इस सम्बन्ध में पक्की राय दूंगा।”

शीलानन्द वहाँ से विदा हुआ। मार्ग में रास साहब से उसकी मुलाकात हुई। उसको देख कर रास साहब ने कहा, “क्या आपने नहीं सुना, कि कुक साहब मर गये और उनकी मृत्यु के साथ-ही-साथ हमलोगों की सारी आशा पर पानी फिर गया।”

“मैं अभी मि० स्टीवेन्सन के यहां से आ रहा हूं।”

“क्या आप मि० स्टीवेन्सन के यहां प्रायः जाया करते हैं?”

“उन्होंने मुझे बुलाया था।”

“ओ! उनकी कन्या बिलकुल हताश हो गयी है।”

शीलानन्द ने समझा था, कि मैं जो रुपये दूंगा, उसके सम्बन्ध में किसी से कुछ नहीं कहूंगा, तथापि वह इतना विना कहे नहीं रह सका, कि हमलोग, इसी सम्बन्ध में विचार कर रहे थे, कि रुपयों का क्या प्रबन्ध होगा। इस पर रास सा उड़ाते हुए कहा, “अच्छा, मालूम हुआ, आपलोग किसी सिद्धान्त पर पहुंच गये हैं।”

“आशा करता हूं, कि रुपये मिल जांयगे।”

" आप आशा करते हैं ? तब तो मैं अभी स्टीवेन्सन साहब के यहाँ जाऊंगा । "

इतना ही कह कर वह चला गया ।

शीलानन्द ने घर पहुंच कर देखा, कि मेरे पिता और बहन बराण्डे में बैठे हैं । प्राचीन प्रथा के अनुसार उसके पिता, ताम्बूल चर्वण कर रहे थे । बहन कुर्सी पर बैठ कर कपड़े पर कसीदा काढ़ रही थी । शीलानन्द को इस प्रकार बैठना पसन्द नहीं था ; इसीसे भाई को देखते ही उसने पांव उतार कर जूता पहन लिया । शीलानन्द ने पिता से पूछा, " आप अब तक जगे हुए हैं ? " पिताने शान्तभाव से कहा, " रात के समय जागरितावस्था में बिछौने पर पड़े रहने की अपेक्षा इस तरह बैठे रहना अच्छा है । शीलानन्द भी एक कुर्सी खींच कर बैठ गया, पर, तुरत ही उठ कर वह चहलकदमी करने लगा । अम्बा ने अपने भाई से कहा, "बैठो भाई ! " शीलानन्द ने अपने पिता और बहन से कहा, " कुक साहब मर गये । तुमलोगों को याद होगा कि वेही उपनिवेश के लिये जितना ख़र्च होनेवाला था वह सब देनेवाले थे । उनके मरने से सब गोलमाल होने लगा । इसीसे मैं वह रुपये देने चाहता हूं । "

इस बात को सुन कर वह वृद्ध रेवत कुछ नहीं बोला । अम्बा ने पूछा, "कितने रुपये दोगे ? " । "दो-तीन हजार । " इसके बाद पिता को लक्ष्य कर कहा, " इस समय मुझे

मालूम होता है, कि मां जो दो हजार रुपये मेरे लिये रख गयी है, उन्हे मैं अपनी इच्छा के अनुसार खर्च कर सकता हूं। "

"जरुर कर सकते हो।"

"मुझे और एक हजार रुपये देने होंगे। मैं यह एक हजार रुपये ज़रूर दे दूंगा।"

"क्या मैं यह जान सकता हूं, कि किस प्रकार ये रुपये दोगे ?"

"क्यों ? मैं जहां तक समझता हूं, यदि सचाई और तत्परता के साथ काम किया जाय, तो एक हजार रुपये दे देना कोई बड़ी बात नहीं है।"

"केवल सचाई और तत्परता दिखाने से रुपये नहीं मिलते; रुपये के लिये किसी के यहां जाने पर मालूम हो जाता है, कि वह रुपया नहीं देता है ओर वहां से खिसक जाता है।"

"पर, इन सब बातों के साथ रुपये देने का तो कोई सम्बन्ध है नहीं।"

"ठीक कहते हो! व्यर्थ की बातें कहने की क्या ज़रुरत! मैं रुपये नहीं दूंगा।"

"मैं यह पहले ही जानता था। अच्छा, अम्बा, क्या तुम अपने रुपये दे सकती हो?"

अम्बा ने बिना सोचे-विचारे कहा, "ज़रुर दूंगी।"

"इस प्रकार रुपये ख़र्च करदेने से. जिनके पास रुपये हैं, उनको बड़ा कष्ट होगा" यह कह कर वृद्ध रेवत वहां से चला गया।"

अम्बा की ओर देख कर शीलानन्द ने कृतज्ञता के साथ धन्यवाद दिया। अम्बा बोली, "पिता बहुत ठीक कहते हैं। एक-ब-एक रुपये ले लेने से दुकानदार सिंह जी को बड़ा कष्ट होगा। पर, मैं ने इसका ज़रा भी विचार नहीं किया।"

"मैं यह नहीं समझता, कि उनको कोई कष्ट होगा। उनका कारबार बहुत बड़ा है—एक हज़ार रुपये ले लेने से उनका कुछ हानि-लाभ नहीं होगा।"

"एक ही हजार रुपया तो नहीं है मेरा और तुम्हारा सब रुपया लेकर तीन हजार रुपया है।"

"तो इससे क्या? तीन हजार रुपये ले लेने पर भी इनकी कुछ हानि नहीं होगी।"

"क्या तुम्हारा यही विचार है? ऐसा न हो, कि एक आदमी का उपकार करने के लिये दूसरे का अपकार किया जाय। सिंह जी बराबर ठीक समय पर सूद देते आते हैं।"

"खैर, मैं यह सब ठीक कर लूंगा। अच्छा, अम्बा, क्या तुम भी इसाई धर्म ग्रहण कर दस आदमिओं का उपकार करने के लिये कोशिश करोगी?"

"लगातार दूसरे के लिये काम करते रहने से अपनी बात मनुष्य भूलजाता है।"

"दूसरे के उद्धार में ही तो अपना उद्धार है।"

"केवल दूसरे के लिये त्याग स्वीकार करने से अपने

जीवन के प्रति अधिक आशक्ति हो जाती है। जीवन तो दुःखमय है।"

"तुम दुःख का हाल क्या जानो, अम्बा? तुम तो सुख स्वच्छन्दता में ही पली हो।"

"सभी वस्तुएँ अनित्य हैं, इस विषय की चिन्ता करना क्या दुःखकर नहीं है?"

"देखता हूं, इसी थोड़ी उमर में तुमने पिता से सब कुछ सीख लिया है।"

"मैंने पिता जी से नहीं सीखा है। भगवान बुद्ध ने ही मुझे शिक्षा दी है।"

"अम्बा, एक बात का विचार मैं ने आज तक नहीं किया। तुह्मारे लिये मुझे एक वर खोजना चाहिये था।"

इसके उत्तर में अम्बाने निर्विकार चित्त से कहा, "मेरे भाग्य में यदि स्वामी का मिलना लिखा होगा, तो मुझे अवश्य स्वामी मिल जायंगे। नहीं तो अविवाहित ही रहूंगी।" इतना कह कर अम्बा शयनागार की ओर चली। शीलानन्द भी अपने शयनागार की ओर चले गये।

दूसरे दिन प्रातः काल ही शीलानन्द, सिंह की दूकान पर गया। इतने सवेरे दूकान पर शीलानन्द को देख कर सिंह को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने शीलानन्द को बड़े आदर के साथ बुला कर बैठने का अनुरोध किया। शीलानन्द

ने बैठकर दूसरी कोई बात पूछने के पहले ही कहा,—“ सिंह जी ! मेरा और अम्बा का जो रुपया आप के यहां है, उसे आपको मुझे देना होगा । ”

“यह क्या ? क्या आप मेरा सर्वनाश करना चाहते हैं ? मैंने तो आपका कुछ भी अपकार नहीं किया है । मैं शर्त के मोताविक बराबर ठीक समय पर सूद देते आरहा हूं । ”

“हां सो ठीक है । इसके लिये मैं आप को धन्यवाद देता हूं । परन्तु, इस समय केवल धन्यवाद से काम नहीं चलेगा; मैं रुपये चाहता हूं । ”

“पर, जब आप कलकत्ते गये थे, तब इन रुपये की ज़रूरत नहीं पड़ी और आज कौन सा ऐसा ज़रूरी काम आ पड़ा जिससे आप रुपये मांग रहे हैं ? ”

“मैं केलानी में उपनिवेश स्थापित करने के लिये ये रुपये सहायता स्वरूप दूंगा । ”

“अच्छा, समझ गया ! कुछ आलसी और धर्म त्यागी मनुष्यों के लिये आप ये रुपये मांग रहे हैं ! ”

इस पर शीलानन्द क्रोधित हो गये, बोले, “इस समय आप यह बात भूल रहे हैं, कि वे लोग भी मेरे ही जैसे इसाई हैं । ”

“नहीं, नहीं, भूलता नहीं । पर, बात यह, है कि उन-लोगोंने विश्वास के वशीभूत हो कर अपना धर्म नहीं छोड़ा है । पादरियों के रुपये के लोभ में आकर उन लोगों ने

दूसरा धर्म ग्रहण किया है। खैर जोहो, धनी इसाई यह भार अपने ऊपर क्यों नही लेते ? इस समय तीन हजार रुपये मैं कहां पाऊंगा ? और यहभी आप देख लीजिये, कि रुपये नहीं रहेंगे तो मेरी हालत क्या होगी ?"

"मैं तो रुपये लूंगा ही।"

"क्या एक साल आप नहीं ठहर सकते ?"

"असम्भव है।"

"अच्छा, छः महीना ? इतना अनुग्रह कीजिये।"

"अच्छा, मैं उन लोगों से पूछ लेता हूं।"

"इतना कह कर शीलानन्द गिरजा घर की ओर चला। अब क्या करूं ? स्टीवेन्सनसे जाकर क्या कहूं ? सिंह जी की क्या हालत होगी ? यही सोचते हुए शीलानन्द आगे बढ़ा। अकस्मात् इसी समय किसीने उसका नाम ले कर पुकारा। जिधर से आवाज़ आयी थी उधर आंख उठा कर देखा तो मिस स्टीवेन्सन को खड़ा पाया।

मिस स्टीवेन्सनने पूछा, कि रुपये का प्रबन्ध हुआ, या नहीं ? शीलानन्दने कहा कि इसी सम्बन्धमें विचार करनेके लिये मैं तुम्हारे पिता के यहां जा रहा हूं। स्टीवेन्सन के पास जा कर शीलानन्दने उनसे कहा कि सिंह जी ने कहा है, कि अभी मैं रुपये नहीं दे सकूंगा, वे छः महीने का समय चाहते हैं।

इस पर स्टीवेन्सन ने हँस कर कहा, "मैं यह अच्छी

तरहसे समझता हूं। क्या कोई रुपया देने की इच्छा करता है? मैं सिंह को खूब पहचानता हूं। मैं भलीभांति जानता हूं, कि वह रुपये नहीं देगा।"

"सिंह ने कहा है, कि इस समय आप रुपये ले लीजियेगा, तो मुझे अपनी दूकान बन्द कर देनी होगी।"

"यह कभी सम्भव नहीं है, कि इतनी बड़ी दूकान तीन हज़ार रुपयों के लिये बन्द हो जायगी। अधर्म ही इन दूकानदारों की असाधुता का कारण है। इन्होंने अपने बाप दादों के धर्म को छोड़ दिया है और अब अपना सुधार करने के लिये ये लोग हमारा भी धर्म नहीं ग्रहण करेंगे।"

यहां हेनरीएटा से बिना पूछे नहीं रहा गया, कि क्या आपने यह अच्छी तरह नहीं समझ सकते, कि सिंह के लिये रुपया देना कठिन है?" इसपर स्टीवेन्सन ने अपनी कन्या से कहा, "मैं अच्छी तरह समझ रहा हूं। हमलोगों को इन्तज़ार करना पड़ेगा, तो हमलोग कभी रुपये नहीं पा सकेंगे।"

शीलानन्द ने कहा, "मैं भी यह समझ रहा हूं, कि छः महीने के बाद भी उससे रुपये मांगे जायंगे, तो वह फिर वही जवाब देगा।"

स्टीवेन्सन बोले, "एक ओर हज़ारों आदमी हैं और एक ओर एक दूकानदार है। एक ओर सहायता चाहने वाले सैकड़ों आदमी हैं और दूसरी ओर एक धूर्त दूकानदार है; अब विचारना यह है, कि किसका अभाव ज्यादा है।"

शीलानन्द बोला, "मैं इसे भलीभांति समझ रहा हूं । इस सम्बन्ध में मुझे अब कुछ भी द्विविधा नहीं है ।"

तथापि हेनरीएटा ने पूछा, "क्या हम लोग छः महीने तक इन्तज़ारी नहीं करसकते ?"

शीलानन्दने फिर कहा, "नहीं, छः महीने के बाद भी फिर वह यही बात कहेगा ।"

स्टीवेन्सन बोले, "और भी एक बात है । यह जनवरी का महीना है ; इस समय काम शुरू नहीं किया जायगा, तो छः महीने के बाद, जब बर्षा का समय आ जायगा, तब कोई काम नहीं होगा । छः महीने इन्तज़ारी करने का मतलब है, एक साल व्यर्थ खोना । और असल तो यह है, कि अभी यह काम नहीं शुरू किया जायगा, तो लोगों का उत्साह वैसा नहीं रह जायगा ।"

"मि० स्टीवेन्सन बहुत ठीक कह रहे हैं । हम अब देर नहीं कर सकते । अभी हम सिंह जी के पास, वकील के द्वारा नोटिस भेजवाते हैं ।"

इतना कह कर शीलानन्द वहां से अपने घर लौट गया । दो पहर के भोजन का समय हो गया था । रेवत के घरमें भोजन के समय किसी प्रकार की बात-चित करना मना था । रेवत का कहना था,-कि **"भोगके लिये भोजन नहीं किया जाता, शरीर धारण करने के लिये ही भोजन किया**

जाता है।" भोजन समाप्त होने पर रैवत ने कहा,— "कल कान्दी में बुद्ध के दन्त-मन्दिर के उत्सव में सम्मिलित होने के लिये जाऊँगा। " इतना कह कर उसने अम्बा को वहां जाने की तैयारी करने की आज्ञा दी। अम्बाने वहां से जाने के पहले शीलानन्द से पूछा, " सिंह जी के बारे में आपने क्या निर्णय किया है ? " इसके उत्तर में शीलानन्द ने कहा,— "सब ठीक हो गया है।" दूसरे दिन प्रातः काल पिता और कन्या, दन्त-मन्दिर की ओर चल पड़े। पुत्र से बिदा होने में पिता को ज्यादा देर नहीं हुई; **क्रन्दन और दुःख मूर्खता के कारण ही किया जाता है।**

रैवत यह कह कर नहीं गया, कि हम लोग कब लौट कर आवेंगे। यह कैसे कहा जा सकता है, कि आज, कल या अमुक दिन में लौट कर आऊंगा ? **जब यही नहीं मालूम है, कि इस मुहूर्त के बाद दूसरे मुहूर्त में क्या होगा, तब एक दिन या दो दिन की बात कैसे कही जा सकती है ? यह जीवन पेड़ में लगे हुए फल के समान है—जैसे प्रति मुहूर्त उस फल के जमीन पर गिरने की सम्भावना बनी रहती है, वैसे ही मृत्यु का भी कुछ निश्चय नहीं है।**

उनलोगों के चले जाने के दूसरे दिन शीलानन्द अपने मकान के वराण्डे में बैठा था। पेरीरा नामक एक व्यक्ति की एक पुस्तक वह पढ़ रहा था। लेखक, उसी देश का रहने वाला और बौद्ध धर्मावलम्बी था। विलायतमें जाकर वहां उसने बहुत दिनों तक अध्ययन किया था। इसाई-मिसनरियों के मत का खण्डन करने में वह अद्वितीय पण्डित था। उस पुस्तक में उसने इसाई और बौद्ध धर्म के प्रभेद पर विचार किया था। वह दोनों धर्मों की विभिन्नता दिखा कर पूछता है, कि "एशिया में मिसनरी लोग किस लिये आते हैं?" बौद्ध धर्म की तुलनामें इसाई धर्म अभी नया है। तथापि अर्थ-वल से वलवान होने के कारण ही इसाई पादरी धर्म प्रचार के लिये एशिया में आया करते हैं। शीलानन्द बड़ी धीरता के साथ यह पुस्तक पढ़ रहा था। उसने इसका उत्तर लिखने का दृढ़ संकल्प किया। उसने स्थिर किया, कि यह पुस्तक मि० और मिस स्टीवेन्सन को दिखा कर और उनसे इस विषय में सलाह लेकर उसका उत्तर लिखूंगा।

शीलानन्द, कुछ देर तक पुस्तक का पढ़ना बन्द कर सामने की ओर देखता रहा। उसे दिखाई पड़ा, कि कुछ दूरी पर एक आदमी, मेरे ही घर की ओर दौड़ता हुआ आ रहा है। वह वही दूकानदार सिंह जी हैं। शीलानन्द समझ गया, कि रुपये के तक़ादे का पत्र पा कर सिंह मेरे यहाँ आ रहा है। उसने सोचा, कि इस समय सिंहसे मुलाकात न करना ही

अच्छा है । इसीसे मकान के पीछे के रास्ते से, वह सिंह के दरवाजे पर पहुंचने के पहले ही बाहर चला गया और सीधे स्टेशन पर पहुंच कर उपनिवेश को जाने वाली गाड़ी पर सवार हो, उपनिवेश में जा पहुंचा । उस समय शीलानन्द के उपनिवेश में आने का समाचार किसी को मालूम नहीं था । शीलानन्द के जो स्वदेशवासी, अपना अपना धर्म छोड़ कर उस उपनिवेश में रहते थे, वे अपनी २ इच्छा के अनुसार बात-चीत कर रहे थे। शीलानन्द की अनुपस्थिति में वे लोग अपने पहले के असभ्योचित आचरण कर रहे थे। शीलानन्द को उनलोगों का यह व्यवहार वहुत बुरा लगा । वे चिन्ता करने लगे; अज्ञात में निद्रा देवी ने उनके ऊपर अपना आधिपत्य फैला दिया । वह जिस आसन पर बैठा था उसी पर सो गया । तन्द्राभिभूत हो कर उस ने स्वप्न देखा कि मैं जहाज पर बैठ कर इङ्गलैण्ड जारहा हूं । परन्तु जहाज, रक्त- समुद्र से हो क जा रहा है। जहाज पर कुल दो प्राणी हैं, जिनमें एकतो वे स्वयं हैं, और दूसरे उसी पुस्तिका के लेखक पेरीरा हैं।

शीलानन्द ने चारों ओर देख कर कहा,—"कैसा गम्भीर रक्त वर्ण है।" पेरीरा ने हंस कर उसके उत्तर में कहा, "रक्त ?" साथ ही साथ समुद्र मानो, कातरोक्ति करने लगा ।

शीलानन्द की तन्द्रा टूट गयी। जाग्रत होने पर पेरीरा के हास्य के साथ साथ मानो और किसीका हास्य उसके कानों में प्रतिध्वनित होने लगा। हाथों से अपनी आंखें पोछ कर वह

चारों ओर देखने लगा। जो सब बालक बालिकाएँ उससे पढ़ने के लिये आये थे, वे ही हंस रहे थे। वह यह जानने को उत्सुक हुआ, कि वे किस लिये हंस रहे हैं और क्या कर रहे हैं। शीलानन्द ने देखा, कि उन्हीं में से एक ने स्लेट पर साहबी पोशाक पहने हुए एक आदमी का चित्र बनाया है—वह चित्र शीलानन्द का ही चित्र है; उसी को लक्ष्य कर वह चित्र बनाया गया है।

घटना साधारण है; प्रत्येक स्कूल के प्रत्येक क्लास में ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं। परन्तु इस समय उनकी जैसी मानसिक अवस्था होरही थी, उससे वह यह सह्य नहीं कर सका। उसके मनमें यह हुआ कि इस समय यदि मैं भरपेट रो सकता, तो मुझे शान्ति मिलती। वह बड़े कष्ट से उस कमरेसे बाहर निकला। उपस्थित बालक बालिकाओं ने अपनी अपनी पुस्तकों पर ध्यान गड़ाया। एक स्लेटकी लिखावट बड़े यत्न से मिटा दी गयी। इसको भी उसने लक्ष्य किया। उसने उन लोगों से पूछा, "तुम लोग यहां कितनी देर से आये हो?" एक ने इसके उत्तर में कहा, "५-७ मिनट से"। एक दूसरे ने कहा, "५-७ घन्टे से।" इस पर शीलानन्द बहुत बिगड़ा। अभागेको ज़रा भी शब्द का ध्यान नहीं है। सन्ध्या निकट चली आ रही थी। उपनिवेश में सन्ध्या के समय ही सब लोग भोजन करते थे। उसने शिक्षार्थियों को छुट्टी देदी।

विद्यार्थियों को छुट्टी दे कर वह प्रति दिन सन्ध्या के समय घर लौट आता था। आज उपनिवेश में ही रहने का विचार स्थिर किया। उपनिवेश में रहनेवालों के लिये जो भोजन तैयार हुआ था उसीमें से स्वयं भोजन कर उसने उनमें से एक को अपने लिये चारपाई लाने को कहा। जिससे शीलानन्द चारपाई लाने को कहा वह यह जान कर बड़े आश्चर्य में आया, कि आज शीलानन्द यहीं रहेंगे। जो हो, वह आज्ञा पालन करने के लिये दूसरे कमरे में चला गया—शीलानन्द टहलने के लिये बाहर चलागया।

लौट कर उसने देखा, कि कमरे में किसी प्रकार की रोशनी का प्रबन्ध नहीं है। वह अपनी पोशाक उतारे बिना ही सो गया, पर उसे नींद नहीं आयी। वह चारपाई पर से उठ कर जहां औपनिवेशिक रहते थे, वहां गया और गुप्त रूप से उनकी बात-चीत सुनने लगा। एक अपने शिकार का वर्णन कर रहा था। वह शिकार खेलने गया था, तो हाथी ने उसपर आक्रमण किया; खृष्ट ईशु का नाम लेने से हाथी नहीं भागा, परन्तु इसाई होने के पहले वे लोग, जिन देवता-देवियों की आराधना करते थे, उनमें से किसी एक का नाम लेने पर हाथी भाग गया। श्रोता बड़ी प्रसन्नता के साथ उस गल्प को सुन रहे थे।

शीलानन्दने उनके निकट जाकर पूछा, कि तुमलोग धर्म-पुस्तकों का पढ़ना छोड़कर यह सब गप्प क्यों कर रहे हो?

उनमें से एकने इसके जवाब में कहा, कि जब हमलोग धार्मिक पुस्तकें पढ़ते हैं तो हमें नींद आती है। इसपर शीलानन्दने कहा, "तुमलोगों के विश्वास में कमी है इसीसे ऐसा होता है।" एक दूसरे ने कहा, "हमलोग तो जान बूझ कर यहां आये नहीं हैं"।

इसी बीचमें शीलानन्द ने देखा, कि एक अन्धकार पूर्ण खुले स्थान में उनमें से एक आदमी नंग-धिड़ंग सो रहा है। शीलानन्द को यह बहुत ही बुरा मालूम हुआ,—यहतो बिलकुल असभ्योचित व्यवहार है। वह अपने आपको भूल गया। उसने उस सोये हुए आदमी को डंडेसे मारा। वह उठ कर खड़ा हो गया। "तुम लोगों को कपड़े और बिछौने किस लिये दिये जाते हैं?" उसने इसके उत्तर में कहा, "मैं आपका नौकर नहीं हूं। मुझे मारने का आपको कोई अधिकार नहीं हैं।" अधिकार नहीं है! मुझे कायदा सिखाना चाहतेहो! आत्मविस्मृत शीलानन्द ने फिर उस पर प्रहार किया; वह इस बार कुछ नहीं बोला,—वहां से चला गया; साथ ही अन्यान्य लोग वह स्थान छोड़ कर चले गये। शीलानन्द, कुछ देर तक उनलोगों की ओर देखता रहा, पीछे अपने कमरेमें लौट कर चारपाई पर लेट रहा।

दूसरे दिन, दिन चढ़ने पर उसकी नींद टूटी। उठ कर शीलानन्द ने देखा कि उपनिवेश खाली पड़ा है। उसके व्यवहार से रुष्ट हो कर सबोंने उपनिवेश छोड़ दिया है। अब

यह समाचार वह स्टीवेन्सन साहब को किस मुंह से दें ? असल में वह अब यह भी स्थिर नहीं कर सका, कि मैं स्टीवेन्सन साहब को कौन सा मुंह दिखलाऊंगा ? परन्तु इस विपद् से भगवान ने ही उसे बचाया ।

शीलानन्द ने सिंह जी के पास वकील के मार्फत जो पत्र भेजा था, उसका फल यह हुआ कि सिंह ने बैंक में रुपये भेज दिये थे। रुपये पहुंच ने के बाद तीन दिनों तक उनलोगों ने शीलानन्द की कोई ख़बर नहीं पायी । उनलोगोंने स्वभावतः समझ लिया था, कि शीलानन्द, उपनिवेश में होगा। इसीसे मिस स्टीवेन्सन स्वयं उपनिवेश में आयी । उसको देख कर वह मिसनरी की छोकड़ी बोली, "आपका चेहरा कुछ उदास मालूम होता है । क्या आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है ?"

शीलानन्द ने इस सवाल का कुछ भी जवाब नहीं दिया, वह एक-ब-एक बोल उठा, "बड़े दुःख की बात है, कि उपनिवेश बिल्कुल खाली हो गया। मेरे जितने देशवासी ईसाई हुए थे, उन सब लोगोंने उपनिवेश छोड़ दिया। मेरी ही गलती से यह सब हुआहै। सारा दोष मेरा है।"

"तब तो सब चौपट हुआ। क्या यह भी सम्भव है !"

"मैं ने एक आदमी को आपे से बाहर हो कर मारा था, उसी का यह फल है, कि सबों ने मिल कर उपनिवेश छोड़ दिया । मैं भली भांति समझ रहां हूं, कि मैं सर्वथा ऐसे

काम के अनुपयुक्त हूं मैं आज ही मि॰ स्टीवेन्सन से अनुरोध करूंगा, कि यह काम किसी दूसरे को सौंप दें।”

“मैं जहां तक समझती हूं, यहाँ तक नौबत नहीं पहुंचेगी। सब ठीक हो जायगा। मनुष्य से भूल होना स्वाभाविक है।”

“यद्यपि भूल होना स्वाभाविक है, किन्तु मैंने दृढ़ प्रतिज्ञा की है कि जीवन में फिर ऐसी भूल न करूंगा।”

मिस स्टीवेन्सन सोचने लगी। शीलानन्द जिस सिद्धान्त पर पहुंच गये हैं, उनको उससे विचलित करना सुसाध्य नहीं है; किन्तु शीलानन्द यदि अपना मत-परिवर्तन न करें तो उस दशामें रुपयों का क्या होगा? विशेषतः शीलानन्द के सिवा दूसरा कोई भी ऐसे कार्य्य के उपयुक्त नहीं है।

अस्तु, उपनिवेश परित्याग कर के कोलम्बो जानाही इस समय दोनो ने ठीक समझा। दोनो एकही गाड़ी में सवार हुये। शीलानन्द के चिन्ता-प्रवाह को दूसरी ओर फेर देने के उद्देश्य से मिशनरी-कन्या उनसे बोली—“क्या चुप मारे ही बैठे रहोगे? अपने जीवन की घटनायें मुझसे कह सुनाओ”

“क्या खूब! मेरे जीवन में विशेष कोई घटना हुई ही नहीं, बल्के तुम अपने ही जीवन की कोई एक घटना कह सुनाओ।”

हेनरीएटा कुछ इधर उधर (अनाकानी) कर के कहने लगी, “लगभग पांच बरस हुए, मैं लङ्का से इङ्गलैण्ड जारही

थी। एक जर्मनी के रहने वाले मेरे साथ ही यात्रा कर रहे थे। यद्यपि मैं जर्ममन भाषा अच्छी तरह नहीं समझती थी, वे भी अंग्रेजी अच्छी तरह नहीं जानते थे, तोभी एक ही दिन की बातचित से हमलोगो में मित्रता हो गई। उन्हे भी धर्मालोचना करना बहुत पसन्द था और मुझे भी। हम दोनों में सभी विषयो में ऐकमत्य होने पर भी एक विषयमें बड़ाही मतभेद था। वे स्वार्थ के ऊपरही अधिक निर्भर करते—अपनी उन्नति करनाही जीवन का मुख्य उद्देश्य उन्होंने स्थिर कर रखा था; किन्तु मैं दश जन के उपकार का विषय ही सोचती—जन-सेवाही जीवना का मुख्य उद्देश्य समझती थी।

" मैं जहां तक समझती हूं, मेरे लिये जीवन में ऐसा सुख-मय समय कभी नहीं आया था। हम दोनों एक साथ बैठ कर सूर्योदय ओर सूर्यास्त होना देखते थे,—अज्ञात में ही हम दोनों, एक दूसरे के ऊपर अनुरक्त हो गये,—अर्थ या भाषा द्वारा किसी ने इस बात को प्रकट नहीं किया।

" दिन पर दिन बीतने लगे। अन्त में जिब्राल्टर पहुंचने पर बांध बिल्कुल टूट गया—हमलोग, विवाह बन्धन में आवद्ध होने के लिये प्रतिज्ञावद्ध हुए। स्थिर हुआ, कि शीघ्र ही सिंहलद्वीप में पहुंच ने पर विवाह हो जायगा। मेरे पास अर्थ नहीं था; वे धनी थे। इस लिये यद्यपि मैं ने पिता से राय नहीं लीथी, तो भी मालूम था, कि वे इस में कुछ आपत्ति नहीं करेंगे।"

"वे जर्मनी अपने घर पहुंचे,—मैं भी इङ्गलैण्ड पहुंच गयी। पत्र-व्यवहार चलने लगा। किन्तु एक दिन एक बहुत बड़ा पत्र मुझे मिला—मेरे प्रियतमने लिखा था, कि विवाहितावस्था में जीवन विताने की अपेक्षा अकेला रह कर धर्म की चर्चा करना ही मैं अच्छा समझता हूं। फिर उनका कुछ समाचार मुझे नहीं मिला।

"यही मेरी कहानी है। हो सकता है, कि जैसा आपने समझा हो, वैसी चित्ताकर्षक यह कहानी न हो। पर उसमें विशेषता यह है, कि इस प्रकार लांछित होने पर भी मनुष्य के प्रति मेरा प्रेम कम नहीं हुआ है--लोक सेवा करने के लिये आज भी मैं वैसी ही प्रस्तुत हूं। असल में मनुष्य के प्रति मेरा प्रेम पहले की अपेक्षा और अधिक बढ़ा ही हुआ है।"

शीलानन्द ने धीरे-धीरे मिस स्टीवेन्सन के हाथ को पकड़ लिया। उस समय वह क्या करता था, इसकी उसे कुछ भी खबर नहीं थी। धीरे-धीरे गद्गद स्वरसे वह बोला, "मिस स्टीवेन्सन! मैं नहीं कह सकता, कि इन दो दिनों को मैं ने किस तरह से बिताया है। मुझे मालूम हो रहा था, कि अब मैं भगवान और मनुष्य-- दोनों द्वारा परित्यक्त हूं। मैं प्रार्थना द्वारा अपने हृदय को शान्त करने

की कोशिश कर रहा था; पर उसका कुछ भी फल नहीं होता था। अकस्मात् तुम्हारे आ जाने से--स्वयं भगवान ने ही तुम्हें यहां भेजा है—मुझे ऐसा मालूम होता है, कि मेरी प्रार्थना के कारण ही तुम यहाँ इस समय आ पहुंची हो। क्या तुम मेरे साथ विवाह करोगी ?"

शीलानन्द की यह बात सुनते मिस स्टीवेन्सन का चेहरा पीला पड़ गया। वह बोली,—"मि० शीलानन्द! आप यह क्या कह रहे हैं ? इन दो दिनों की मानसिक चंचलता के कारण क्या आप की बुद्धि बिगड़ गयी है ?"

"आप ऐसा न समझियेगा। जिस दिन पहले पहल मैं ने आप को देखा था, उसी दिन, उसी समय से मैं आपको प्यार कर रहा हूं। परन्तु, यदि मैं यह अच्छी तरह नहीं समझता, कि इस समय स्वयं भगवान ने आपको मेरे पास भेज दिया है, तो जबतक जीता रहता; तबतक कभी आपसे यह बात नहीं कहता। मुझे ऐसा मालूम हो रहा है, कि भगवान ही आदेश कर रहे हैं कि इनको ग्रहण करो; ये तुम्हारी ही हैं।"

कुछ देर तक दोनों चुपचाप बैठे रहे। अन्त में शीलानन्द बोला, "मिस स्टीवेन्सन! मैंने बहुत कुछ सोचा विचारा है, पर किसी सिद्धान्त पर उपनीत नहीं हो सकता"। कुछ देर नीरव रहने के बाद वह फिर कहने लगा, "मैं यह नहीं समझ रहा हूं, कि अब आगे मैं क्या करूंगा। अपने किसी पापके

प्रायश्चित स्वरूप ही इधर कुछ दिनों तक लगातार मैंने दण्ड भोग किया है। अपने जीवन में मैंने एक काम किया है। उसके लिये मैं पुरस्कार पाऊंगा या दण्ड-भोग करूंगा, यह ठीक ठीक नहीं कह सकता। वह काम है इसाई धर्म ग्रहण। मैं नहीं जानता, कि कुछ दिनों तक जो असहनीय क्लेश भोग करना पड़ा है, वह इसी लिये या इसका कुछ दूसरा कारण है। मैं नहीं समझ सकता, कि अपना धर्म परित्याग कर जो मैंने इसाई धर्म ग्रहण कर लिया है, उसी के लिये तो मुझे इसा-मसी दण्ड नहीं दे रहे हैं!"

"मि० शीलानन्द! यह आप क्या बोल रहे हैं?"

"मैं कुछ नहीं समझ रहा हूं। मुझे मालूम होरहा है, कि यदि मैं कुछ दिनों के लिये इसाई धर्म का परित्याग कर सकता, तो सम्भव था, कि मैं किसी सिद्धान्त पर उपनीत हो सकता।"

"यह फिर आप क्या कहने लगे? इसाई धर्म क्या कोई कपड़ा है, कि आप इच्छानुसार इसको पहन सकते हैं और उतार कर अलग रख दे सकते हैं? आप जो बातें बोल रहे हैं उनसे मालूम होता है, कि विना समझे-बूझे आपने यह धर्म ग्रहण कर लिया है। यदि आपके मनमें विश्वास रहे गा, तो आपके मनमें प्रेम भी रहेगा।"

"तब तो कहना होगा, कि यह विश्वास ही मेरे लिये विघ्न-स्वरूप हो रहा है।"

"तर्क द्वारा जो पराजित नहीं किया जा सके वही असली विश्वास है; जब तक पराजित नहीं होगा, तब तक वह विश्वास है ।"

"खूब! क्या आप यह कहना चाहतीं हैं, कि विना समझ-बूझ के भी कोई काम करना चाहिये? तबतो यही मालूम होता है, कि शताब्दी में भी जिस बात की शिक्षा नहीं मिल सके, एक रात में ही उसकी शिक्षा प्राप्त की जासकती है। मैं यदि मूर्ति बनाने वाला होता, तो विश्वासी को निम्न लिखित रूप में बनाता—एक मनुष्य की मूर्ति बनाता, उसके मुख का भाव ऐसा बनाता, जिससे मालूम होता, कि वह कुछ बोलेगा; दोनों हाथ फैले हुए रहते, आंखों से मालूम होता, कि वह दूर—बहुत दूर, यहां तक कि दिशाओं के अन्तत क—देख रहा है। अविश्वासी को युग्मासनासीन, आंखें ज़मीन की ओर गड़ी हुई, और हाथ शरीर के साथ विजड़ित करके प्रस्तुत करता। अविश्वासी अपने मन-ही-मन सोचेगा, मन-ही-मन बातचीत करेगा और मन-ही-मन कार्य करेगा।"

"अर्थात् आप बुद्ध की बात कह रहे हैं।"

शीलानन्द ने हंस कर कहा, "मैं भूल कर दूसरे विषयकी ओर बहका जा रहा हूं। मेरे जीवन में धर्मान्तर ग्रहण के सिवाय दूसरे किसी विषयमें किसी दिन कोई सन्देह नहीं हुआ। परन्तु, उसी दिन से संसार में मेरे लिये स्थान नहीं है। मैंने अपने पिता के मनमें कष्ट पहुंचाया है, उनके साथ कलह किया है। यह सब मेरे दूसरा धर्म ग्रहण करने का फल है। भगवान

के प्रति अनुरक्त हूं, क्या इसी से वे मुझे दोषी समझेंगे? उपर्युक्त दोष के लिये वे मुझे किस प्रकार दण्ड दे सकते हैं? भगवान के यहां तो अविचार नाम मात्र को भी नहीं है। इसाई धर्म ग्रहण किया है, इससे दूसरे देवता, मेरे ऊपर असन्तुष्ट होंगे, यह भी कभी नहीं ख़याल किया है—क्योंकि **ईश्वर एक और अद्वितीय हैं**। यदि आपके और मेरे उस एक देवता के सिवा दूसरे देवता रहते, तो कहना पड़ता, कि दोनों देवता मिथ्या हैं।"

हेनरीएटा ने मन-ही-मन कहा, "होसकता है कि अभी तक पौत्तलिकता-प्रेत इसके शिर पर सवार हो या दिमाग़ बिगड़ गया हो।"

शीलानन्द अपने आप कहता चला, "इन कुछ दिनों में मैंने कितनी यातना भोग की है! मुझे मालूम होता है, इसका एक मात्र कारण अपना धर्म परित्याग कर इसाई धर्म ग्रहण करना है। इस नये धर्म के ग्रहण करने का कारण और कुछ नहीं है। उसका कारण है—मेरी चंचलता—सर्वदा नवीनता के प्रति आकांक्षा; जो है, उससे अतृप्ति। यह भी किसी पूर्ववर्त्ती कारण से ही हुआ है। यह मेरे कर्म का फल है।"

"आप कर्म फल का बड़ा ही दुःखमय चित्र चित्रित कर रहे हैं।"

मानो, शीलानन्द किसी की बात पर नहीं बोल रहे हैं, वे अपने आप कह रहे हैं, "इस से क्या होता जाता है? जो

सत्य है, उसकी विवेचना करने में दोष क्या है? भाग्य चक्र में पिस जाऊंगा, वह अच्छा—तथापि देवताओं के कोड़े की चोट नहीं वर्दाश्त कर सकूंगा।"

"आपने अभी कहा है, कि इसाई धर्म ग्रहण करने के कारण ही मुझे यह दण्ड मिल रहा है। क्या आप पूरा-पूरा जवाब चाहते हैं? आप यह क्यों नहीं समझते, कि आपमें आन्तरिक भक्ति का अभाव है—अविश्वास ही इस यन्त्रणा का एकमात्र कारण है? आप समझ जाइये, कि मैं कट्टर विश्वासी हूं, परन्तु वास्तव में आपके हृदय के बीच विश्वास और अविश्वास में घोर झगड़ा चल रहा है। आप ऐसा क्यों समझ रहे हैं कि आपके तथाकथित विश्वास के कारण ही आपको क्लेश और दण्ड मिल रहा है? वास्तव में आप को क्या क्लेश और दण्ड मिला है? और यदि मिला भी है, तो क्या वह आपके अविश्वास के कारण नहीं मिला है? आपने एक बनिये को रुपये दिये थे—इस समय आप यह निर्णय नहीं कर सकते हैं, कि वे रुपये उसी के पास रहें या भगवान की सेवा में लगाये जायं। आपने आगा पीछा सोचे बिना ही काम किया है और दूसरे की सहानुभूति खो बैठे हैं। आप अपने चंचल चित्त को ले कर उपनिवेश में आये थे, यहां आपको दो रात भलीभाँति नींद नहीं आयी—भोजनादि भी समयानुसार नहीं हुआ—और दूसरा कौन सा कारण हो सकता है?"

शीलानन्द सोचने लगे कि मुझे क्या हो गया है ? कुछतो नहीं हुआ है— केवल मेरी उत्साह-हीनता के कारण ही ऐसा हुआ है । मेरा क्या हुआ है, जो चिन्ता कर सकता है, उसके काम का आधा हो जाता है । अपनी आत्माका अनुसन्धान आरम्भ करने से ही अपना स्वरुप दिखाई देता है ।

शीलानन्दने हेनरीएटा से पूछा,— " आपने कहा है, कि सिंह ने रुपया जमा कर दिया ? 'हेनरीएटा ने सम्मति सूचक शिर हिलाया । शीलानन्द ने अपनी पाकेट-बुकसे एक टुकड़ा कागज निकाल कर उस पर कुछ लिखा, और वह कागज हेनरीएटा को देदिया । हेनरीएटा ने उसको पढ़ा, उस पर लिखा था, ' पत्र बाहक को सिंह जी के दिये हुए रुपये दे दिये जायं । " उसने वह कागज शीलानन्द को लौटा कर कहा " आप यह पत्र पिताजी को या रास साहब को दे दीजियेगा" इससे शीलानन्द बहुत दुःखी हुए, तब हेनरीएटा ने कहा,— "अच्छा दीजिये, मैं इसे पिता जी को दे दूंगी । "

बात-चीत करते-करते दोनों स्टीवेन्सन के मकान पर पहुंच गये । कमरे में जाकर इन लोगों ने देखा, कि स्टीवेन्सन और रास साहब वहां बैठे हैं । रास साहबने पूछा,—"उपनिवेश का कार्य कैसा चल रहा है ? "

"बड़े दुःख के साथ सूचित करने पड़ता है, कि इस समय उपनिवेश जन-शून्य हो गया है —जितने नये आये थे, वे सब चले गये । "

"यह क्या ? आप क्या कह रहे हैं ?"

"मेरे दुर्भाग्य से, मैं ने क्रोध से अन्धा हो कर एक आदमी को बहुत मारा था। उसी से सब-के-सब चले गये।"

कमरे में थोड़ी देर तक घोर निस्तब्धता छायी रही। अन्तमें स्टीवेन्सन ने कहा,—"इसमें सन्देह नहीं, कि यह बड़े दुःख की बात हुई।"

रासने कहा,—"महाशय! हमलोगों को यदि रुपये देनेमें आपको दुःख था, तो साफ कह देते। ऐसा उपाय अवलम्बन करने की तो कोई आवश्यकता नहीं थी ?"

शीलानन्द का बोलना बन्द हो गया। हेनरीएटा का मुख मण्डल लाल हो गया—उसने शीलानन्द के दिये हुए कागज को रास साहब के हाथ में थमा दिया। रास साहब घबड़ा कर बोले,—"ओ, देखता हूं कि मेरे समझनेमें भूल होगयी है। जोहो, मैं अभी बैंक जाता हूं, रुपये को हाथ में कर लेना ही अच्छा है।"

रास साहब के चले जाने पर मि० स्टीवेन्सन शीलानन्दसे पूछने लगे कि कैसे क्या हुआ ? शीलानन्द ने कहा,—"आपकी कन्या सब बातें जानती हैं। वेही कहेंगी। मैं इस समय घर जाता हूं"। शीलानन्द इसके बाद वहां से बिदा हुए।

शीलानन्द ने जब घर पहुँच कर पूछा कि पिता और बहन अभी लौट कर आये या नहीं तब उसे मालूम हुआ, कि अभी वे लोग नहीं आये हैं। शीलानन्द ने देखा, कि उसके नामसे

आया हुआ सिंहकी भाषा में एक पत्र रखा हुआ है। पत्र सिंह के हाथका लिखा हुआ था—

"शीलानन्द! दया करो। हाथ जोड़ कर मैं तुम से प्रार्थना कर रहा हूं। मेरे ऊपर दया न हो, तो मेरी स्त्री और मेरे चार बच्चों की ओर देखो। कोई भी धर्म—यहां तक कि तुम्हारा नया धर्म भी—यह नहीं कहेगा, कि दूसरे की बुराई करो।"

पत्र पढ़ कर वह स्तम्भित हो गया—पत्र उसके हाथसे गिर पड़ा। सिंह के लिये उसका अन्तः करण रोने लगा। सिंह की क्या हालत है, यह जानने के लिये वह बाजार की ओर गया; वहां सुना, कि उसी तीन हजार रुपये के लिये सिंह की दूकान बन्द हो गयी। अब उपाय क्या है? वह स्टीवेन्सन साहबके मकान की ओर चला। रास साहब को भी वहां देख कर उसने अपना रुपया वापस मांगा। रास साहब ने उसकी यह बात सुन, बड़े कड़े शब्दों में कहा,—"आज आपने रुपये दिये और आजही उन्हे वापस मांग रहे हैं। रुपया हम-लोगों के हाथ में आ गया है। इस बातका विचार करना जरुरी है, कि इन रुपयों के ले लेने से सिंह की हानि हुई है, परन्तु साथ ही साथ यह भी देखना होगा कि एक आदमी की हानि होने पर भी उन रुपये से कितने आदमियों का उपकार होगा। सिंह के दिवालिया हो जाने पर भी यह कोई कैसे कह सकता है, कि उन्हीं तीन हजार रुपये

के लिये वह दिवालिया हो गया है। इसलिये सब ओर विचार कर देखना होगा। हमलोगों को अपना कर्त्तव्य भूल जानेसे कैसे काम चलेगा? हम लोग रुपये वापस नहीं दे सकते।"

शीलानन्द व्यर्थ मनोरथ हो कर घर लौटा, वहाँ पहुँच कर उसने सुना कि पिता लौट आये हैं। इस समाचार से वह अत्यन्त संतुष्ट हुआ। उसको आशा हुई, कि सब बातें सुन कर पिता ही मेरी प्रार्थना पूरी कर देंगे। परन्तु जब उसने पूछा कि पिता कहां हैं तो उसकी वहन ने कहा, कि वे बिमार हैं। दूसरा उपाय न देख कर वह रोगी पिता की शय्या के पास गया और उनसे सारी बातें कह सुनायीं। रेवन ने पहले कुछ जवाब नहीं दिया। पीछे शीलानन्द के बार-बार प्रार्थना करने पर उसने कहा,—"मैं बहुत सोच कर देखता हूँ, कि मैं रुपये नहीं दे सकूंगा—नहीं दूंगा।"

"क्यों?"

"ऐसा सवाल करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है" कह कर बूढ़ा शय्या से उठा। शीलानन्द ने पिता के चरणों को पकड़ कर प्रार्थना करना चाहा। भवितव्य को कौन कह सकता है? जैसे ही उसने पांव पकड़ा, वैसे ही वृद्ध भी अकस्मात् गिर पड़ा। खड़ाऊं की चोट से बूढ़े का शिर फट गया। रक्त देख कर शीलानन्द किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गया। वृद्ध ने कहा,—"अम्बा को बुलालाओ।" यही उसकी आखिरी बात थी। उसी रात को वह तथागत

के निकट पहुंच गया। पुत्र-कन्या के साथ फिर उसकी कोई बात-चीत नहीं हुई।

शीलानन्द ने बहन की ओर देख कर कहा,—"मैं पिता की हत्या करने वाला हूं, मेरे इस जीवन में मुझे अब शान्ति नहीं मिलेगी।"

बहन का हृदय रो पड़ा, वह बोली,—"भाई! भाई!! यदि तुम कलकत्ते नहीं जाते, तो यह सब नहीं होता!"

शीलानन्द ने कहा,—"बहन! मेरे पाप का दण्ड नहीं है; आत्म निग्रह में मुक्ति नहीं है; प्रेम से रक्षा नहीं। एकमात्र उपाय है तथागत के चरणों का आश्रय। मैं अपने अहंभाव का त्याग करूंगा। इसीसे मेरे पाप का प्रायश्चित्त होगा।"

अम्बा कुछ भी नहीं बोल सकती थी। शीलानन्द कहने लगा,—"व्यापारी सिंह को तीन हज़ार के बदले छः हज़ार देने होंगे। इसके बाद यह संसार शीलानन्द से रहित होगा। नया शीलानन्द दूसरे के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखेगा, उसका अपना ही काम बहुत सा बाकी है। कल मैं मठ में जाऊंगा—संसार त्याग करूंगा। और बहन! तुम क्या करोगी?"

"भाई! मैं भी तुम्हारे ही चरण-चिह्नों पर चलूंगी।"

जीवन्मुक्ति

पुण्यक्षेत्र वाराणसी के निकट एक गांव में गौतम नाम का एक प्रौढ़ गृहस्थ रहता था। संसार में उसको कुछ विशेष अभाव नहीं था—संसार में उसकी स्पृहा भी नहीं थी। इसीसे कुछ दिन बीत जाने पर उसने संसार की माया काटने का दृढ़ संकल्प कर, गांव के दो चार आदमियों के साथ एक राय हो कर अपना घर छोड़ दिया। उसके साथ में अब रह गया केवल एक दण्ड, कमर में एक कपड़ा और शरीर पर एक चादर।

चौ-मुहाने तक पहुंच कर उसके साथियों ने सीधे मार्ग से चलना आरम्भ किया। परन्तु गौतम ने समझा,—"सीधे मार्ग से तो सभी चलते हैं, मैं ऐसा नहीं करूंगा। मैं बायीं ओरसे जो रास्ता गया है, उसीसे चलूंगा"। गौतम के इस अभिप्राय को जान कर उसके साथियों ने बहुत जोर दे कर कहा,—"भाई! उस मार्ग से कोई न जाय। हमलोगों के साथ आओ। देखते नहीं, कि सबलोग इसी पथ से जा रहे हैं।" गौतम ने उन लोगों की बात पर कान नहीं दिया। "मैं इसी पथ से जाऊँगा" कह कर अपने रास्ते पर चलने लगा। इस पर गौतम के साथियों

ने कहा,—" वह पागल है । वह जैसे चाहे, उसको वैसे ही जाने दो ।

गौतम अकेला चलने लगा—यह पथ नया है, इस पथ पर दूसरा कोई पथिक नहीं है । कुछ दूर जाने पर वह एक नये स्थान पर पहुंच गया। स्थान बिलकुल अपरिचित था, तथापि वह अपने पथ पर चलने लगा ।

सन्ध्या हो आयी । उसको मालूम होने लगा कि चारों ओर केवल मरु भूमि है, और उस मरु-भूमि में वह है—और सामने उसी की छाया है । गौतम ने उस मरु-भूमि को देखा—वही छाया बराबर देखने लगा,—और सोचने लगा यदि मृत्यु को पराजित नहीं कर सका, तो यह जीवन धारण करना व्यर्थ ही होगा । मैंने अर्थ की माया-ममता का परित्याग कर दिया है । रमणी की तृष्णा का विसर्जन कर दिया । सम्मान रूपी विष अब मुझको जर्जरीभूत नहीं कर सकेगा । पर यदि मृत्यु को पराभव नहीं कर सका तो अर्थ में वितृष्णा, रमणी-त्याग, सम्मान में निःस्पृहता से क्या लाभ ?" चिन्ताकुल-चित्त और अवनत मस्तक हो कर वह आगे बढ़ने लगा ।

बहुत देर के बाद गौतम ने एक नया दृश्य देखा—छोटा एक बहुत सुन्दर उपवन है । उसी उपवन में एक वृद्ध बैठा है, जिसके बदन पर प्रसन्नता छायी हुई है । गौतम ने

आदरपूर्वक उस वृद्ध को अभिवादन किया और सोचा, मैं इस असतो-पार वृद्ध से पूछूंगा ; हो सकता है, कि ये मृत्यु के पराजित करने का कारण मुझसे बता दें ।

उसने वृद्ध से पूछा,—" मृत्यु को किस प्रकार पराजित किया जा सकता है ; क्या आपको यह मालूम है ? "

गोतम की इस बात को सुन कर वृद्ध हँस पड़े । उन्हों ने पूछा,—" क्या तुमने काञ्चन की माया छोड़ दी है ? "

" हाँ महाशय ! छोड़ दिया है । "

" सम्मान का मोह ? "

" उसको भी । "

" रूप-तृष्णा ? "

" उसे भी दूर कर दिया है ? "

" धन की तृष्णा को कैसे छोड़ा ? "

" सन्देह द्वारा । "

" सम्मान-स्पृहा ? "

" सन्देह द्वारा । ?

" रूप-तृष्णा ? "

" सन्देह द्वारा । "

" मुझसे सब विस्तार पूर्वक कहो । "

वृद्ध की इस बात को सुन कर गोतम कहने लगा, " मैं बहुत दिनों से वाराणासी के निकट रह कर अपना दिन काट रहा हूं । एक दिन एक असम्भव उपाय से मैं ने

बहुत सा धन कमाया। उस अतुल धन को देख कर मेरे मन में लोभ का संचार हुआ। मैं धीरे-धीरे उस धन को बढ़ाने लगा। वह धन इतना ज्यादा हो गया, कि डकैतों के भय से उसे मैं ने दूसरे के घर रख दिया; पर धन की वृद्धि के साथ-साथ मेरी दुर्दशा की भी वृद्धि होने लगी। मैं रात दिन इसी चिन्ता में लगा रहता था, कि किस प्रकार यह धन और भी ज्यादा बढ़ेगा। इसके बाद इस बात की चिन्ता हुई, कि इतने यत्न से जिस धन को सञ्चित किया है, वह किसी दिन मुझसे खो न जाय। पर अर्थ से जो दुर्दशा होती है, उसका ख़याल मुझे नहीं हुआ। जिसके यहाँ मैं ने अपना सब धन रखा था, वह एक दिन दिवालिया हो गया। मेरा सर्वस्व नष्ट हो गया। दुःख से मेरा हृदय फटने लगा। उसी समय एक संन्यासी ने एक दिन मेरे दरवाजे पर आकर भिक्षा मांगी। मैं ने उससे क्रोध के साथ चिल्ला कर कहा, " मेरा सर्वस्व नष्ट हो गया-- तथापि तुम मुझसे ही भिक्षा मांगते हो ? " मेरी यह बात सुन कर उसने अपने भिक्षा-पात्र से आधा अन्न निकाल कर मुझे दे दिया। मैं ने उससे पूछा, कि यह क्या होगा ? उसने उत्तर दिया, कि भूख दूर होगी; और क्या चाहते हो ? मैं ने इसके उत्तर में कहा,—" मेरे भोजन का प्रबन्ध है। तुम्हारा अन्न मैं नहीं चाहता; मेरा सर्वस्व तो लुट गया। उस संन्यासी ने वहां से जाते समय कहा,—

" निर्बोध ! यदि तू समझ सकता, कि दरिद्रता कितना महान् धन है, तो आज तेरी यह दशा नहीं होती । "

" उनके चले जाने पर मैं उनके परित्यक्त अन्न की ओर देख कर बहुत चिन्ताकुल हो गया । यह भिक्षुक दिन में मांगता है, वही खाता है ; इतने पर भी अपने भीख के अन्न में से अनायास उसने मुझे आधा दे दिया । मैं मन-ही-मन सोचने लगा, कि इतने दिनों तक जिस भावसे मैं ने अपना समय व्यतीत किया है, उसी भाव से समय बिताना क्या उचित है ? सोचते-ही-सोचते मैं वहीं सो गया । नींद टूटने पर मेरी दुर्दशा दूसरे रूप में मेरे सामने आयी । दूसरे के यहाँ धन रखा हुआ है या नहीं इस चिन्ता से क्या लाभ ? वह धन यदि दूसरे का रहता, तो मैं उसको छू भी नहीं सकता था । इसके पहले हो उपवास द्वारा मैं अपना शरीर त्याग देता । क्या अब मैं पहले की अपेक्षा अधिक निश्चिन्त हो कर अपना दिन नहीं बिता सकता ?—इसी बात को सोच कर मैं धनकी बात भूल गया ।"

" लेकिन इसी समय मेरे मन में एक दूसरी चिन्ता का प्रादुर्भाव हुआ । मेरा जमा किया हुआ धन नष्ट हो गया । अब मैं कैसे अपना शरीर धारण करूँगा ? इस चिन्ता से मेरा चित्त चंचल हो गया । अन्तमें संन्यास ग्रहण करने का मैं ने निश्चय किया । "

" मैं संन्यास ग्रहण कर बड़े यत्न के साथ वेदों का

अध्ययन करने लगा। कठिन ध्यान का व्रत आचरण करने लगा। उसी समय एक संन्यासी से सुना, कि मैं अन्यान्य संन्यासियों और गृहस्थों का ध्यान आकृष्ट करने में समर्थ हुआ हूं। सुन कर हृदय आनन्द से नाँच उठा। मैं और भी अधिक दृढ़ता के साथ ध्यान में प्रवृत्त हुआ। उसी के साथ साथ मेरी प्रतिष्ठा भी उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। पीछे विद्या से मेरा उदर कहीं फट न जाय, इसलिये मैं ने अपनी कमर में लोहे की सांकल पहनने की आज्ञा पायी—सम्प्रदाय में और किसी भी संन्यासी को यह अधिकार नहीं था।"

'एक दिन किसी दूसरे देश के रहने वाले एक संन्यासी वहाँ विचार करने के लिये आ पहुँचे। वे बहुत प्रसिद्ध संन्यासी थे। उन्होंने मुझको विचार के लिये बुलाया। विचार के समय मैं पद पद पर पराजित होने लगा। अन्त में मैं ने मिथ्या का आश्रय लेने का विचार स्थिर किया। परन्तु मेरे प्रतिद्वन्द्वी को न मालूम कैसे इस बात का पता लग गया; वे बोले,—"अपने हाथ में नंगी तलवार लिये हुए एक दैत्य तुम्हारे पीछे खड़ा है—मिथ्या बोलते ही वह तुम्हारा सर, धड़से अलग कर देगा।" मैं ने अपनी पराजय स्वीकार की। मेरी अब वह प्रसिद्धि न रही; उस पर से सब लोगों को यह बात मालूम हो गयी, कि मैं मिथ्या का आश्रय लेने को प्रस्तुत था।"

"मैं अपनी कुटी के द्वार पर बैठ कर सोचने लगा,

"प्रसिद्धि पाने की इच्छा ने ही मुझे इतना नीच बनाया है!" उस समय भी मेरे ललाट पर पसीना था। पास ही एक ताड़ का पंखा पड़ा देख उसे उठा लिया और थकावट दूर करने के लिये धीरे-धीरे उसी को झलने लगा। अपने शरीर में वायु लगने पर मैं समझने लगा, कि यह क्या? क्या यह पंखा, हवा ला रहा है? जो वायु पृथ्वी की चारो ओर बहती रहती है, क्या वह भी इस प्रकार नहीं आती? हम लोग कहते हैं. कि यह इन्द्र करते हैं, यह वरुण दे रहे हैं, परन्तु प्रभञ्जन भी क्या व्यजन-संचालित वायु के समान घटना के अधीन नहीं हैं? वाराणसी में जिन्होंने धर्मचक्र का प्रवर्तन किया है क्या उन्हीं की बात सत्य है?"

"संन्यास से मेरा अनुराग कम हो गया। मैं सोचने लगा, कि मैं और मेरे प्रतिद्वन्द्वी दोनों ने एक अनित्य वस्तु के लिये वाद-विवाद किया था। क्या एक दूसरे की अपेक्षा श्रेष्ठ है? किस लिये हमलोग अपनी-अपनी शान्ति नष्ट कर रहे हैं!" इस विचार के आतेही मैंने कमर से लोहे की सांकल खोल कर फेंक दिया और साथ ही संन्यास भी त्याग दिया। किसी निर्जन कुटी में रह कर जिस में साधारण परिश्रम द्वारा जीवन बीते और शान्ति की प्राप्ति हो, वैसे ही उपाय की खोज में लगा।"

"निकटवर्त्ती एक गांव में मैंने शिक्षक की वृत्ति का

चान्दनी भूमण्डल पर छिटक गयी तो मैंने देखा, कि वह मेरी ही प्रियतमा युवती थी और बक्स में मेरा ही दिया हुआ कंकण रखा था। तुरत ही मैं गंगा में कूद पड़ा। बड़े कष्ट से मैंने उसका उद्धार किया।"

"इसके बाद मैं सोचने लगा, यह कैसा प्यार है, क्या इसी को प्रेम कहते हैं? जिस भाव से प्रेरित हो कर एक जीव को गंगा में फेंकते समय जरा भी मैं नहीं हिचकिचाया, वह भी हृदय की एक कलुषित वृत्ति मात्र है। मेरे मनमें अत्यन्त घृणा हुई। दूसरे दिन प्रातः काल गांव के सभी लोगों ने एकत्रित हो कर मेरा अभिनन्दन किया और कहा,—"अपने जीवन को पवित्र बना कर आपने एक युवती को आसन्न-मृत्यु के मुंह से बचा लिया है। युवती के माता पिता उसी समय मुझे दामाद बनाने को तैयार हुए; पर मैं कुछ नहीं बोला, बिना किसी से कुछ कहे सुने मैंने वह स्थान छोड़ दिया।"

"इसके बाद से मैं केवल मृत्यु के विषयमें चिन्ता कर रहा हूँ। धन-लोभ को दबा दिया है, पर उससे क्या होता है? सम्मान के मोहसे मुक्त हो गया हूँ पर उससे क्या लाभ हुआ? रूप-तृष्णा का परित्याग कर दिया, पर इससे क्या हुआ? मैं तो अभी मृत्यु को जीत नहीं सका। इसीसे मैंने मृत्यु को जीतने का संकल्प कर लिया है। यहाँ

सबब है, कि मैं आप से पूछ रहा था, कि किस प्रकार मृत्यु को पराभूत किया जा सकता है ।?"

गौतम की इन सब बातों को सुन कर बूढ़े ने कहा,—"यहीं ठहरो; मेरे घर में झाड़ू दिया करो, मेरे लिये भिक्षा मांग लाओ और मौन हो कर रहो । इस प्रकार तीन वर्ष जब बित जाय तब फिर मुझसे पूछना ।"

गौतम ने कहा, "महाशय! इससे मेरा क्या उपकार होगा? मैं कैसे तीन वर्ष व्यतीत करूंगा? कौन कह सकता है कि कलही मौत नहीं आ जायगी? मैं चिरस्थायी शान्ति के लिये प्रयत्न कर रहा हूं, इसी से मैं अभी मृत्यु को पराजित करने चाहता हूं ।"

फिर वृद्धने हँस कर कहा,—"ऐसी बात है, तो पर्वत के वृद्ध के निकट जाओ ।"

"कौन पर्वत, महाशय?"

"मेरु पर्वत ।"

"मैं वहां कैसे पहुंचूंगा?"

"गंगा की इसी तट-भूमि को पकड़े हुए चले जाओ । जहां पर गंगा ने पर्वत विदीर्ण किया है, वहीं पहुँच ने पर तुम मेरु पर्वत को देख सकोगे ।"

"परन्तु महाशय! मैं उस स्थान को कैसे पहचानूंगा?"

"तुम पर्वत पर पहुँचोगे, तो पर्वतही तुम्हें पहचान लेगा ।"

"किन्तु महाशय ! मैं वहां के वृद्ध को कैसे पहचान सकूंगा ?"

"ज्योंही वे तुम्हें देखेंगे, त्योंही तुम उन्हें पहचान लोगे।"

यह सुन कर गौतम, उसी मुहूर्त्त उस स्थानको छोड़ कर मेरु की खोज में चल पड़े। उनके जाते समय वृद्धने उनसे कह दिया,—"केवल एक बात याद रखना। जब मनुष्यों के रहने का स्थान तुमसे छूट जायगा तब तुम एक बहुत दूर तक विस्तृत मरु भूमि और तुषार से आवृत मठ देखोगे। उस स्थान पर जब पहुंचना, तो कंधे पर से चादर उतार देना; जोर से बोलना मत, अन्यथा पत्थर-पानी से तुम्हारी नाक में दम आ जायगा; हां यह दण्ड आपने साथ में रख सकते हो।"

गौतम ने इस उपदेश के अनुसार काम करने की प्रतिज्ञा की; तब उस वृद्धने फिरकहा,—"वत्स ! एक बात और है। जब मेरू पर्वत दृष्टिगोचर हो जाय, तो आंखें मूंद कर अग्रसर होना। जबतक तुम आंखें खुली रखोगे तब तक वह पर्वत और दूर होता जायगा।"

इस बात को भी स्मरण रख कर गौतम साहसके साथ अग्रसर हुए।

बहुत दिनों तक पर्यटन करने के बाद वे मथुरा पहुंचे। वहां महाकाल की मूर्ति विराजित थी। सहस्रों उपासक

वहां हत्या कर रहे थे। गौतम ने उनसे पूछा,—" ये कौन हैं ? "

उपासकों में से एक ने कहा " संन्यासी होकरभी तुम लयकर्त्ता महाकाल को नहीं पहचानते । "

गौतम ने पूछा, " क्या महाकाल मृत्यु हैं ? "

उपासकों ने कहा, " यह हम लोग नहीं जानते । "

गौतम ने फिर पूछा, " तो क्या ये जीवन हैं ? "

उन्हों ने फिर कहा, " हम नहीं जानते । "

" तो तुम लोग इनकी पूजा क्यों करते हो ? "

" हम लोग तो नहीं जानते ; पर हमारे पूर्व पुरुष इनकी पूजा करते थे, इसीसे हमलोग भी इनकी पूजा करते हैं । "

" इन लोगों की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है " कह कर गौतम उस स्थान से आगे बढ़े ।

रास्ते में और भी बहुत दिन व्यतीत करने के बाद, गौतम हस्तिनापुर जा पहुंचे । वहां हजारों घुड़सवार सैनिकों का अधीश्वर और लाखों योद्धाओं का अधिनायक एक राजा उस करता था। गौतम ने नगर में पहुंच कर देखा, कि नगरवासी उत्सव और आनन्द में उन्मत्त हो रहे हैं ; वहां के मकान सजे सजाये हैं। उन्हों ने लोगों से पूछा, " नगर में उत्सव कैसा है ? "

नागरिकों ने उत्तर दिया " तुम विदेशी हो, यहां अभी

नये आये हो, इसी से ऐसा सवाल करते हो। यहां प्रति-दिन उत्सव ही रहता है।"

इसी बीच में सुसज्जित युवक युवतियों का एक दल वहां आ पहुंचा। उनलोगों ने संन्यासी को निमन्त्रण दिया। गौतम उनका निमन्त्रण नहीं ग्रहण कर सके—इसका कारण यह था कि अभी उनका काम पूरा नहीं हुआ था। इस पर युवक युवतियों ने ठहाका लगा कर कहा, "सन्यासी का भी कोई काम होता है?" इसके उत्तर में गौतम ने कहा—"मैं मृत्यु को पराजित करने के लिये मेरु पर्वत पर जा रहा हूं।"

इस बात को सुन कर वे लोग बड़े आश्चर्य में आ गये। आपस में ही वे एक दूसरे से कहने लगे,—"संन्यासी मेरु पर्वत पर जा रहे हैं; मृत्यु को पराजित करना इनकी इस यात्रा का उद्देश्य है!" फिर उनकी ओर देख कर बाले,—"आप इसके लिये इतना व्यस्त क्यों हैं? मृत्यु को परा-जित करने का प्रयोजन क्या है?"

गौतम ने कहा, "प्रयोजन है। क्या तुम लोग मेरे साथ चलोगे?"

उनलोगों ने कहा,—"संन्यासी बाबा! हमलोगों को इतना समय कहां है?"

"तुमलोग इस समय क्या करोगे?"

"हमलोग इस समय सुन्दर नाच करेंगे।"

"उसके बाद?"

"नाच के बाद हमलोग स्नान और शरीर में सुगन्धित पदार्थ का लेपन करेंगे।"

"उसके बाद ?"

"खाना पीना होगा।"

"उसके बाद ?"

"जब रात हो जायगी, तब हमलोग आमोद प्रमोद में लगेंगे।"

"फिर ?"

"हमलोग फिर स्नान और शरीर में सुगन्धित पदार्थ लगा कर अपने यार दोस्तों के साथ आमोद प्रमोद में उलझेंगे।"

"उसके बाद ?"

"उसके बाद अब क्या ? आज जिस प्रकार आनन्द में मस्त रहेंगे, कल भी वैसे ही आनन्द मनायेंगे।"

गौतम ने सोचा, "ये लोग भी मूर्ख हैं।" यह समझ कर फिर वे वहाँ से चल पड़े।

कुछ दिनों के बाद वे हरिद्वार में जा पहुंचे, वहाँ गौतम ने बहुत से योगियों को अत्यन्त कठिन योग में व्यावृत देखा। एक योगी केवल वृक्ष का छाल खा कर तपस्या कर रहे थे; दूसरे योगी, सन्ध्या के समय चावल का एक दाना खा कर अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे; तीसरे योगी रात-दिन नाभी मूल को जल में डुबा कर योग साधन में लगे थे; एक योगी,

अपनी चारों ओर अग्नि के कुण्ड प्रज्वलित कर उसी बीच में बैठे थे। कहने का मतलब यह, कि इसी प्रकार सभी योगी, अत्यन्त कठोर तपस्या में लगे हुए थे। गौतम के निकट पहुंचने पर उनलोगों ने इन्हें भी अपने दल में मिलने के लिये अनुरोध किया। गौतम ने कहा,—"मैं मेरु पर्वत पर मृत्यु को पराभव करने के लिये जा रहा हूं।"

संन्यासियों ने कहा, "महाशय! हमलोगों का भी उद्देश्य यही है।"

गौतमने उनलोगों से पूछा, "आपलोग, किस प्रकार मृत्यु को पराभूत कीजियेगा?"

उन्होंने कहा, "कष्टकर तपश्चरण के द्वारा हमलोग श्रेष्ठ ब्रह्मत्व प्राप्त करेंगे और मृत्यु को पराभूत करेंगे।"

गौतम ने पूछा, "आपलोग उस श्रेष्ठ ब्रह्मत्व को आँखों से देखेंगे या अन्तष्करण से अनुभव करेंगे? और आपलोग किस प्रकार समझियेगा, कि इस प्रकार ब्रह्मत्व प्राप्त किया जाता है?"

"ऋषियों ने यही शिक्षा दी है।"

"तब तो ऋषियों ने अवश्य उसका दर्शन किया होगा। और वे लोग, उसे विशेष रूप से जान ते होंगे।"

"हमलोगों का ऐसा ही विश्वास है।"

"तो आपलोग उसी ब्रह्मत्व को पाना चाहते हैं?"

"निश्चय! गृह शून्य व्यक्ति जिस प्रकार अपने गृहका

अन्वेषण करता है, उसी प्रकार हमलोग ब्रह्मतत्व का अनु-सन्धान करते हैं।"

गौतम ने मन-ही-मन कहा, "ये सब साधु मनुष्य यह नहीं जानते, कि सभी प्रकार के बन्धनों से ही क्लेश उत्पन्न होता है। अनिश्चित पदार्थ के लिये बन्धन में पड़ने से और अधिक क्लेश होता है। ये सब सन्यासी, मृत्यु को पराभूत करने नहीं चाहते। ये लोग, मृत्यु के हाथ से अपना छुटकारा पाना चाहते हैं। ये भी मूर्ख हैं।" इतना कह कर वे वहाँ से भी आगे बढ़े।

कुछ दूर जाने के बाद वे एक बरफ से ढके हुए देश में पहुंचे।

वह स्थान जन शून्य था। वहां उन्होंने अपनी चादर भी फेंक दी, केवल दण्ड हाथ में धारण किये हुए आगे बढ़े। उसके बाद वे उस स्थान में पहुंचे जहां गङ्गा पहाड़ छेद कर निकली हैं।

वहां वे मेरु पर्वत का पता लगाने लगे। चारो ओर पहाड़ों को एक एक करके देखने लगे; सभी उनको एकही तरह के जान पड़ते थे। लक्ष्य करते करते उन्हें ज्ञात हुआ कि उनमें से एक पहाड़ क्रमशः ऊंचा हो रहा है। तब उनने समझा कि यही मेरु पर्वत है। पर्वत पर पहुंचने के लिये वे जल्दी २ चलने लगे; किन्तु उन्हे जान पड़ा कि वे

जितना ही आगे बढ़ते जाते हैं, पर्वत उतना पीछे हटता जाता है। अन्तमें वृद्ध की बात उन्हे याद आई,—आंखें मूंद कर आगे बढ़ना होगा। वे आंखें मूंद कर धीरे धीरे सावधानी से आगे बढ़ने लगे। कुछ दूर चले जाने पर सोचा कि मैं पर्वत के पास पहुंचा कि नहीं इसे आंखें खोल कर एक बार देख लूं। आंखें खोलीं,—देखा पर्वत ज्यों का त्यों ही है; दूर—और दूर—बहुत दूर है। अन्त में वे हताश हो गये। वृद्ध ने क्या उनके साथ दिल्लगी की है? यदि आंखें न खोलें तो कैसे समझेंगे कि वे मेरु पर्वत के पास पहुंच गये हैं?

गौतम क्रोध से अन्धा हो कर चिल्ला उठे। उसी समय आंधी बहने लगी। भयानक वज्र घोष होने लगा। गौतम बहुत घबड़ाये। ठहर ने का स्थान भी नहीं था। साथ ही बरफ, पानी और ओले पड़ने लगे। गौतम मृत्यु को सुनिश्चित जान कर पृथ्वी पर बैठ गये। बोले—"मृत्यु! अच्छा वही हो।"

एक व एक प्रकृति ने दूसरी मूर्ति धारण की। मेरु पर्वत उनके बहुत ही पास है। इस बार उसने आंखे नहीं खोलीं। आंखें मूंदे ही वे आगे बढ़े। निर्विकार चित्त से आगे बढ़ते ही उन्हे नींद आने लगी। तुरत नींद आ गई। पर वह नींद थी! जागने पर उन्हे जान पड़ने लगा मानो वे युगयुगान्तर की नींद का आनन्द ले चुके हैं और उसी के प्रभाव से उनने शान्ति लाभ की है। और भी आश्चर्य का विषय यह है कि

मेरु पर्वत अदृश्य हो गया है और उसकी जगह एक वृद्ध बैठे हुए अपनी फटी कथरी सी रहे हैं। गौतम ने उस वृद्ध से मेरु पर्वत की बात पूछने का निश्चय किया। वे यह सोचही रहे थे। इतने में उस वृद्ध ने मस्तक उठा कर देखा; गौतम समझ गये कि यही वे मेरु पर्वत के वृद्ध हैं।

वृद्ध ने पूछा "गौतम! पहुंच गये?" गौतम अचम्भे में आ गये कि वृद्ध ने कैसे उन्हे पहचान लिया। वृद्ध ने हंसकर कहा "वत्स! मैं युगयुगान्तर से तेरा नाम सुनता आता हूं, तुम किस लिये यहां आये हो?"

"मृत्यु किस प्रकार से पराभूत किया जा सकता है, इसी बात को पूछने के लिये मैं आप के पास आया हूं।"

वृद्ध फिर हंस पड़े, पूछा "तुम क्या धन के मोह-माया का त्याग कर चुके हो?"

"हां, महाशय!"

"तुम क्या रुप-तृष्णा से कातर नहीं होते?"

"ना महाशय!"

"तुम क्या संमान-लालसा को छोड़ चुके हो?"

"हां भगवन्!"

"किस प्रकार तुमने सुवर्ण के मोह-माया का त्याग किया है?"

"सन्देह के द्वारा।"

"और रूप तृष्णा का?"

" उसे भी सन्देह द्वारा ही । "

" और संमान-तृष्णा का ? "

" उसे भी उसी प्रकार से ! "

" मेरे आगे विस्तार पूर्वक बर्णन करो । "

गौतम ने पुरानी कहानी कह सुनाई । वृद्ध सभी वृत्तान्त सुन कर सिर हिलाते हिलाते बोले—" वत्स ! बहुत अच्छा किया है । धन तृष्णा की बेड़ी काट चुके हो, तुम रूप-तृष्णासे कातर नहीं होते, समान-तृष्णा अब तुम्हें उत्तेजित नहीं करती; किन्तु तुमने क्या जीवन को भी पराजित किया है ? क्योंकि उसे न करने से तुम मृत्यु को पराजित करने में समर्थ नहीं हो सकोगे । "

गौतम बोले " भगवन् ! मैं नहीं जानता कि जीवन क्या वस्तु है ? मुझे उसे समझा देने की कृपा की जाय । जान लेने पर मैं उसे भी पराजित करूंगा । "

" तुम्ही जीवन हो । "

" पिताजी ! क्या मैं ही ! "

" हां, तुम अपने आपही तन्मय हो । मृत्यु को पराजित करने के पहले तुमको इसे भी पराजित करना पड़ेगा । "

तब गौतम हाथ जोड़ कर बोले " पिताजी ! उत्तम आज्ञा दी है ; मुझे उपदेश दीजिये, मैं तैयार हूं । "

वृद्ध फिर हँस पड़े, बोले " वत्स तुम अनेक कार्य्यों का साधन कर चुकेहो ; किन्तु याद रखना कार्य्य सम्पादन

से ही मनुष्य की श्रेष्ठता प्रमाणित नहीं होती ; निवृत्ति ही श्रेष्ठ कार्य्य है ।"

"पिता जी ! मैं क्या सभी कार्यों से निवृत्ति लाभ करने में समर्थ नहीं हुआ हूं ?"

"तुम्हारी यह निवृत्ति निवृत्ति नहीं है ।"

"भगवन् ! तो मुझे निवृत्ति की शिक्षा दीजिये ।"

वृद्ध ने गौतम को तीन कबूतर दिये—वे तीनों कबूतर अमावस की रात की तरह घोर कृष्ण वर्ण थे, कहीं जरा भी श्वेत वर्ण का चिन्ह भी नहीं था । वृद्ध ने कहा—"कल फिर आना और इन कबूतरों में क्या परिवर्त्तन हुआ उसे मुझ से कहना ।"

गौतम वहां से चल पड़े और सोचने लगे कि मैं इन कबूतरों को लेकर क्या करूंगा ।

दूसरे दिन उनने वृद्ध के निकट आकर निवेदन किया कि हर एक कबूतर को एक एक श्वेत पंख देख पड़े हैं ।

वृद्ध ने कहा "साधु, वत्स ! साधु ! धीरज धरो । तुम्ही मृत्यु को पराजित कर सकोगे–यह इसी का पूर्वाभास है । प्रति दिन ही इन सभों के ऐसेही एक एक श्वेत पंख निकलते देख पड़ेंगे । धैर्य्य धारण कर के कुछ दिन तक प्रतीक्षा करो । अन्तमें जब इन कबूतरों में फिर एक भी काले रंग का पंख न रह जाय तो तुम

उनको खा जाना और फिर मेरे पास आना। उस समय मैं मृत्यु को कैसे पराजित करना होगा इसकी शिक्षा तुम्हे दूंगा।"

गौतम को यह काम बड़ाही सहज जान पड़ा। वे प्रसन्न चित्तसे वहां से चले गये।

दिन पर दिन बीतने लगा; महीने के बाद महीना बीत गया, बरस के बाद बरस निकल गये; हर एक दिन कबूतरोंके देहमें एक एक श्वेत पंख निकलते देख पड़ने लगे और श्वेत पंखों को निकलते देख गौतम आशामें दिन बिताने लगे। पहले पहल वे सोचते, "अहा! कब आखरी पंख देखूंगा?" किन्तु बहुत कालतक आशाही आशामें रहकर उनके मनमें फिर यह चिन्ता उठतीही न थी—वैसी आशाका उदय होनाही बन्द हो गया—वे निस्पृह चित्तसे दिन व्यतीत करने लगे।

छठा बरस आया और वह भी बीत गया। सातवां बरस आया; अब थोड़ेही काले पंख बाकी रह गये हैं। पहले वे एक दूसरे से लड़ा भिड़ा करते, पर अब तीनो में गाढ़ी प्रीति हो गई है। अब वे कैसे मधुर स्वर से घुटकते हैं। सारा दिन गौतम उन्हीं कबूतरों को देखते २ बिता देते।

अन्तमें सभी पंख सफेद होगये। अब एकभी पंख काला न रह गया। गौतमने विचारा—"मैं मृत्यु को पराजित करने के लिये यहां आया हूं। किन्तु इन तीन निरीह प्राणियों के वधसे क्या फल होगा? मृत्यु को जीवन को

तरह और जीवन को मृत्यु की तरह मान लेने में क्या दोष होगा ? यही सोच कर पिंजड़े का दरवाजा खोल दिया; तीनों कबूतरोंने बाहर निकल कर उनका तीन बार प्रदक्षिण किया; उसके बाद वे तीनों ऊपर की ओर उड़कर आकाश में विलीन होगये । गौतम यह सब वृत्तान्त निवेदन करने के लिये वृद्धके समीप उपस्थित हुए ।

किन्तु वहां जाकर गौतम ने देखा कि वृद्ध गायब हैं; वहां स्वच्छ जलसे भरा एक प्रशान्त ह्रद है और उसके मध्य-स्थल में एक हंस है—प्रशान्त ह्रद की तरह हंसभी प्रशान्त है । गौतम धीरे धीरे ह्रद के तीर पर जा उपस्थित हुए और हंस को देखने लगे, और देखा, ह्रद के भीतर रंग बिरंग के बहुतेरे पत्थल के खण्ड हैं ; और चञ्चल मछलियां तैर रही हैं ।

उन्हे जान पड़ने लगा कि पहले उन्होंने कभी भी ऐसी शान्ति नहीं पायी थी । वे बार बार उसी प्रशान्त सरोवर और उन्हीं चञ्चल मछलियों को देखने लगे । देखते देखते सन्ध्या होगई । गौतम अपने आश्रम की ओर लौटे । उस समय यद्यपि न सूर्य का प्रकाश था और न चन्द्रमा ही का, तथापि पथ पहचानने में उन्हे किसी तरहका क्लेश उठाने नहीं पड़ा । आश्रम में पहुंच कर उनने देखा कि प्रथम वृद्ध बैठे हुए हैं । वृद्धने कहा, "क्यों वत्स ? तुम क्या मृत्यु का पराभव करने में समर्थ हो गये हो ?"

गौतमने उत्तर दिया "पूज्य महाशय ! मैं उन तीनों कबूतरों की हत्या न कर सका ; सुतरां मैं मृत्यु का पराभव करने में भी समर्थ न हो सका ; किन्तु अब मैं मृत्यु से डरता भी नहीं हूं। जीवन और मृत्यु अब मेरे निकट एक सा जान पड़ता है । अब मेरे मन में किसी प्रकार की अशान्ति नहीं देख पड़ती ।

बहुत दिनों के बाद गौतम घर लौटे। उसी चौराहे में आकर उनने दक्षिण का पथ अवलम्बन किया । जिन लोगों के साथ उनने एक समय में गांव छोड़ा था, दूसरी ओर से वे लोग भी उसी स्थान पर आ पहुंचे ।

वे सब गौतम के पास आकर यद्यपि उन्हे पहचान न सके, तो भी भक्ति के साथ उन सबोंने उन को प्रणाम किया। उन सबों के कन्धे पर भारी बोझ लदा था। बोझ के भार से आगे बढ़ने में उन सबों को बड़ा कष्ट जान पड़ता था, किन्तु गौतम के कन्धे पर कुछ भी बोझ न था; वे दण्ड हाथ में लिये हुए बड़ी तेजी से और प्रशान्त चित्त से आगे बढ़ रहे थे ।

जो लोग इस कहानी को पढ़ें वे—सभी लोग जब दक्षिण ओर गमन करें तब—बायीं ओर गमन करें;

क्योंकि एकाकी गमन कर सकनेसे ही निर्जनता होती है और साथही जो अच्छा पथ है उसी के आरम्भ करने की सूचना करती है। जैसे प्रकृति के सभी फलों को पूर्णता लाभ करने के लिये उष्णता (गर्मी) की आवश्यकता होती है, वैसेही मनुष्यों को भी पूर्णता लाभ के लिये निर्जनता (एकान्त) की ज़रूरत है। सामने सुविशाल मैदान है, जिसमें हर तरहकी सांसारिक आकांक्षा के सिवा और कुछ भी नहीं है और जहाँ पर केवल अपने एक विवेक को छोड़कर विश्राम के लिये और किसी प्रकार की छाया भी नहीं है। जैसे खुले मैदान मेंही—चाहे सूर्य कहीं क्यों न रहे—हम लोगों को अपना छाया दीख पड़ती है, वैसेही सांसारिक सभी चिन्ताओं से मुक्त रहने सेही—सभी वासनाओं के परित्याग करने से ही—विवेक को परिपूर्णता दीख पड़ती है। जैसे बीच बीचमें हमलोगों की छाया कभी पीछे और कभी आगे चलती है, इसी तरह विवेक भी अतीत और भविष्य की घटनाओं से संश्लिष्ट रहकर आगे पीछे गमन करता है।

कुटी के सामने गौतम ने जिस **वृद्ध को** देखाथा, वे **विचारशक्ति** के सिवा और कोई नहीं। **गङ्गा मनुष्य का शोकप्रवाह है।** ऊंचे से ऊंचे पर आरोहण करने से ही धीरे २ गङ्गा के निर्गमस्थान पर पहुंच सकता है अर्थात् उसे सभी क्लेशों के मूल स्थान दीख पड़ेगा। जो अहं-

भावको पाने चाहे उसको उच्च कथोपकथन, क्रोध, घृणा इत्यादि सभी बाधक भावों का त्याग करना होगा।

सुचिन्ता ही दाड है, अन्धड़, पानी तुषार-पात **विवेक के आदेश हैं**—मनुष्यों के आवास में ये बहुत ही धीरे २ बात कहते हैं। किन्तु निर्जन में ये बिजली की तरह कड़ककर सावधान कर देते हैं, **जो आदमी अपना कान उंगली से बन्द करता है, वह और भी ऊंचे स्वर से भीतरी विवेक की बातें सुनता है।**

तीनों कबूतरों में से **पहला** है अहंभाव के प्रति अत्यधिक प्रेम, **दूसरा** है औरों के प्रति ईर्ष्या, और इन दोनों को जो स्वाभाविक कह कर मानता है वही **तीसरा** है। **धीरे २ कृष्णवर्ण से श्वेतवर्ण में परिणत होना चिन्ता और सतर्कता द्वारा इन सबों का परिवर्जन करने के सिवा और कुछ भी नहीं है।** जो इन तीनों के त्याग करने में समर्थ हुआ है उसके निकट मृत्यु के नाम की कोई वस्तु नहीं रह जाती। जैसे दिन के न होने पर रात नहीं हो सकती, इसी तरह जीवन के न रहने पर मृत्यु नहीं आ सकती।

पहाड़ी स्वच्छ हृद त्याग का फल और पुरस्कार है । हंस जैसे अपने पंख में शिर छिपा रखता है उसी तरह त्याग अपने पुरस्कार में ही अपने को छिपाये रखता है ।

जिसके अन्तःकरणमें प्रकाश है उसे बाहरी किसी प्रकार के प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती । जैसे एक मनुष्य चाहे कितना ही ऊंचा क्यों न कूदे, उसे फिर भी भूमि पर आना ही पड़ेगा, इसी तरह आत्मतत्व के कितना ही ऊपर एक मनुष्य क्यों न चढ़ जाय, उसे फिर आत्मतत्व की ओर लौट आना ही होगा; किन्तु वह जिस स्थान से लौटता है, वहां से कुछ न कुछ लेही आता है; इसी से वह सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है, किन्तु सभी कोई उसे पहचान नहीं सकते । राजमार्ग से वे बांये गमन करते हैं और लौटते समय वे राज पथ के दांहनी ओर से ही आते हैं । इससे प्रतीत होता है कि यात्रा कालमें वे सभी के निकट निर्बोध कह कर परिगणित होने पर भी, प्रत्यागमन समय में वे महापुरुष साधुरूपसे लौटते हैं ।

जिन की कीर्ति चारों ओर फैल रही है, जिनने कन्दर्प का दर्प चूर्ण किया है, जिनने त्रैलोक्य का हित साधन किया है, जिनका हृदय मेरु की तरह सारवान है और जो लोक समाज के ध्वज स्वरूप हैं, उन्ही अमित बुद्धिशाली, मनोहर, शान्ति दाता, रूपवान और उदार सुगत को प्रणाम करके पुस्तक समाप्त की गई ।

THE UNIVERSITY LIBRARY
RECEIVED ON
NOV 1927
ALLAHABAD

* इति *

सेन्ट्रल प्रान्टींङ्ग प्रेस, मुरादपुर पटना ।